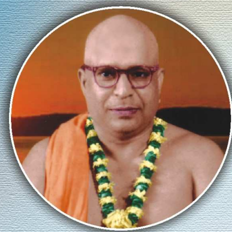
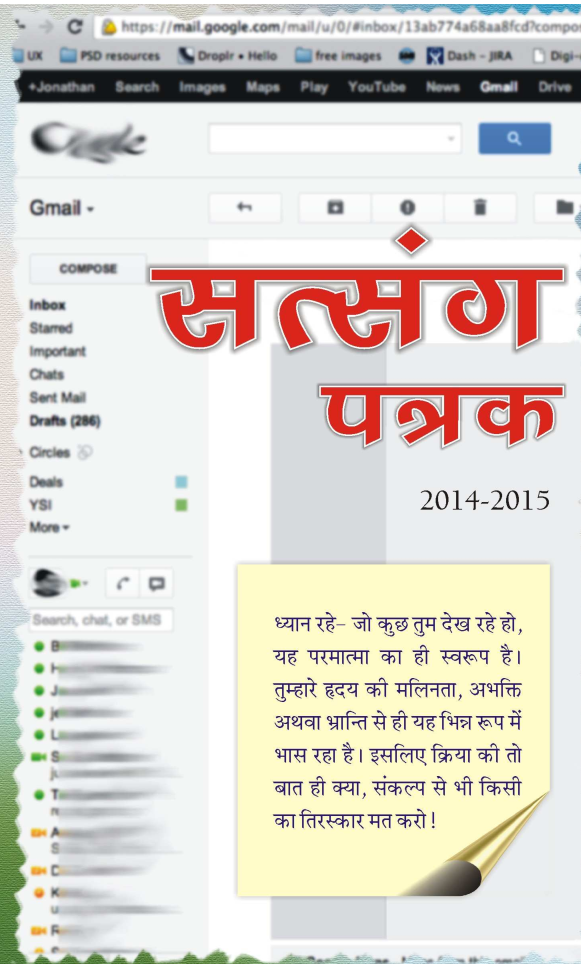


अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज

आशा पूर्ण होगी, भगवान् से।
निराशा पहुँचायेगी, भगवान् तक।
दोनों के बीच लटको मत।
दोनों ही मार्ग हैं।
किसी एक को पकड़ कर चलो।
परमात्मा की ओर चलना, चलते रहना ही
शुद्ध जीवन है।
प्रेमी को विश्राम कहाँ !

आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर
वृन्दावन



सत्संग पत्रक

2014-2015

ध्यान रहे- जो कुछ तुम देख रहे हो, यह परमात्मा का ही स्वरूप है। तुम्हारे हृदय की मलिनता, अभक्ति अथवा भ्रान्ति से ही यह भिन्न रूप में भास रहा है। इसलिए क्रिया की तो बात ही क्या, संकल्प से भी किसी का तिरस्कार मत करो !

सत्संग पत्रक

(2014–2015)

संकलन

आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर

वृन्दावन

श्रीगुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर

त्वदीय वस्तु गोविन्द !
तुभ्यमेव समर्पयेत् ।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆❖◆❖◆❖◆❖◆❖◆❖◆

परम पूज्य महाराजश्री के एक कृपा–पात्र के
सौजन्य से
आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर
आनन्द वृन्दावन, वृन्दावन
द्वारा
वितरणार्थ प्रकाशित

मुद्रण–संयोजन
श्रीहरिनाम प्रेस, लोई बाजार, वृन्दावन–281121
दूरध्वनि : 7500987654

शुभाशंसा

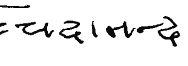
हमारे भारतवर्ष की इस पुण्यभूमि में अध्यात्म जीवन जीने के इच्छुकों को प्रभु की अहैतुकी कृपा के फलस्वरूप सन्त-महापुरुष का स्वस्थ मार्गदर्शन सदैव से प्राप्त होता रहा है।

आधुनिक युग के सत्सङ्गियों के मनोभाव के अनुरूप प्रत्येक गुरुवार को उन्हें 'आनन्द प्रस्तुति' के संयोजन के माध्यम से पिछले एक वर्ष से उनके ई-मेल के पते पर 'सत्सङ्ग पत्रक' नियमित रूपसे भेजे गये, जिनमें प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण त्यौहार-पर्व के दिन एवं महापुरुषों अर्थात् सनातन धर्म के सभी आचार्यों की जयन्ती के दिन पर भी तद्-तद् पर्व से सम्बन्धित पूज्य महाराजश्रीकी प्रसादपूर्ण सत्सङ्ग-सामग्री प्रेषित की जाती रही।

हमें प्रसन्नता है कि उपरोक्त सम्पूर्ण सत्संग-पत्रकोंका संकलन अब वर्तमान 'सत्सङ्ग पत्रक' के रूप में प्रकाशित होकर आपके हाथों में श्रीगुरुपूर्णिमा के पवित्र पर्व पर प्रसाद रूप से पहुँच सका है।

इन 55 सत्सङ्ग-पत्रकों का प्रत्येक पत्रक कुछ-न-कुछ अलौकिक सन्देश लेकर जिज्ञासु के पास पहुँचता रहा है। अब 'आनन्द प्रस्तुति' द्वारा यह सर्वसुलभ करवा दिया गया है। सुश्री साध्वी कञ्चन एवं इनके सहयोगियों को हमारे साधुवाद ! वितरणार्थ प्रकाशित कराने वाले भक्त के प्रति भी हमारी शुभकामनाएँ ! मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इसमें प्रस्तुत विचारों पर चिन्तन-मनन करके अवश्य लाभान्वित होंगे।

विनयावनत



गंगा दशहरा,
दिनांक 28/05/2015

मङ्गलाचरण

स्वच्छं किञ्चन चिच्चमत्कृतिघनं विश्वार्पणं दर्पणम्
स्वच्छन्दं विमृशामि मामहमिदन्त्वन्तद्विचित्रं महः।
दिक्कालार्थ-विकास-ह्रास-सुषमा विष्वक्क्रमा अक्रमाः
स्पन्दन्ते सकलाकला अविकलं यस्मिञ्जगद्रश्मयः।।

'मैं अपने आपको एक अनिर्वचनीय, स्वच्छन्द, स्वच्छ स्वप्रकाश ज्योतिके रूपमें अनुभव कर रहा हूँ। मैं चिद्‌वस्तुकी घन चमत्कृति हूँ। मैं वह दर्पण हूँ जिसमें विश्व अर्पित है। यह, तुम, वह – इनकी विचित्रता मुझमें ही भास रही है। मुझ ज्योतिर्घन से जो विश्वरश्मियाँ स्पन्दित होती हैं, उन्हींसे देश-काल-वस्तु के विकास-ह्रासका सौन्दर्य चमकता है। उनमें सम्पूर्ण क्रम है, कोई क्रम नहीं है। वे सकल हैं, अकल हैं। मैं वही निर्विकार ज्योति हूँ।'

❖ ◆ ❖

'स्वस्त्ययन'

वेद का मन्त्र है –

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुरुरुक्रमः।

(वाजसनेयि संहिता 36.9)

इसका अर्थ यह है कि मित्र देवता हम लोगोंको शान्ति देवें। मित्रदेवता माने दिन के देवता, सूर्य देवता और हृदयमें स्नेह देनेवाले देवता। हमारे हृदयको स्नेही बनानेवाले देवता 'मित्र'। '**ञिमिदास्नेहने, मेध्यति इति मित्रं**'।

'मित्र' किसको कहते हैं ? जिसको देखकर कठोर-से-कठोर, कड़वा से भी कड़वा, क्रूर से भी क्रूर दिल पसीज जावे, उसका नाम होता है 'मित्र'। जिसके सामने गुस्सा आता रहे, वह अपना मित्र नहीं है। अगर खूब गुस्सा आया हो और मित्र सामने आकर खड़ा हो जाए तो एक मुस्कान उसको देंगे, हाथ जोड़ेंगे और जिसके ऊपर गुस्सा आया, वह भूल जाएगा। जो हमारे दिल में स्नेह का संचार करे, उसका नाम 'मित्र', दिन के देवता सूर्य। माने दिन में हमारा हृदय हमेशा स्नेह से भरा रहे, प्रकाश देता रहे और प्रकाश का अनुभव करता रहे।

आगे है, '**शं वरुणः**'। 'वरुण' माने रात्रिका देवता। जब हम अज्ञानान्धकारमें होते हैं, उस समय भी जो हमारी भलाई के लिए, हमारी रक्षा के लिए तत्पर रहे, उसका नाम है 'वरुणदेवता'। वह हमारे लिए

शांतिकारक हो। '**शं नो भवत्वर्यमा**'- जो हमारी आंखोंके देवता हैं, वे शांतिकारक हों। माने हमारी दृष्टि सर्वत्र पवित्र रहे, सम रहे। 'अर्यमा' माने आँखोंका देवता होता है। '**शं न इन्द्रः**'- 'इन्द्र' माने हाथका देवता। वह हमारे लिए शांतिकारक हो। हम खुद अपने हाथसे कोई ऐसा काम न कर बैठें, जिससे हमारे जीवनमें अशान्ति आवे।

तो दिनमें शांति, रात में शांति, हमारी नजरमें शान्ति, हमारे हाथमें शान्ति हो। और, '**बृहस्पति**'- माने बुद्धिके देवता। ये भी शांतिकारक हों। हमारे विचार शांतिकारक हों। '**शं नो विष्णुरुरुक्रमः**'। दिन भरमें कई चालसे चलना पड़ता है, कई जगह जाना पड़ता है, कई लक्ष्य होते हैं, कई ओर गति होती है। तो 'विष्णु' माने पांवके देवता। हमारे पांव गलत रास्ते पर न पड़ें। '**उरुक्रमः**'- चलना तो कई तरह पड़ेगा। कभी पूर्व, कभी पश्चिम। कभी दोस्त के साथ, कभी दुश्मन के साथ। पर हमारे कदम गलत न पड़ें कभी। हम बिलकुल सही-सही कदम उठावें।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–1

परम पूज्य महाराजश्रीके सान्निध्य में

प्रश्न : मानस जप हो सकता है ?

उत्तर : हो तो सकता है, परन्तु उसमें धोखा है।

प्रश्न : मन किसी दूसरे विचारमें चला जाता है ?

उत्तर : हाँ, जीभसे जप करनेमें मन तो साथ रहता ही है। सबके लिए जप बढ़िया साधन है। जो लोग ऊँची–ऊँची साधना बताते हैं वे यह नहीं देखते कि उसे लोग कर सकते हैं कि नहीं। फिर होता यह है कि उड़े तो एकदम ऊँचे आसमानमें और पट से गिरे धरती पर।

प्रश्न : आप किस साधना को अच्छी मानते हैं ?

उत्तर : ज्ञानीके लिए सभी साधना अच्छी है। वह किसी साधनाको बुरी नहीं मानता। देखना यह है कि किसके लिए कौन–सी साधना है।

प्रश्न: साधना छोड़ दें ?

उत्तर : साधना छोड़ देना तो सबसे बड़ी साधना है। पहले अपने घरमें बैठेंगे तब तो साधना छूटेगी !

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–2

भक्त को इन आठ बातों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए -

1– नामजप, कीर्तन और प्रभु गुणगान– ये भक्ति के मुख्य साधन हैं।

2– साधु सङ्ग करना।

3– सांसारिक चर्चा से बचना।

4– दूसरों की निंदा न तो सुनें और न करें।

5– स्वयं अमानी रहकर दूसरोंको मान दें।

6– किसीका चित्त न दुखावें और यदि दूसरे चित्त दुखानेका काम करें तो स्वयं दु:खी न हों।

7– अपनी प्रतिष्ठा को विष्ठावत् समझें।

8– सर्वदा सच्चरित्र होकर जीवन व्यतीत करें।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–3

हमारे जीवनमें भगवान् ने जो कुछ दिया है, वह सब त्याग के लिए नहीं, उपभोग के लिए है। यहाँ तक कि काम, क्रोध, लोभ, मोह भी नितान्त नष्ट करने के लिए नहीं हैं। यदि ये केवल नष्ट करनेके लिए होते तो भागवत-सृष्टिमें बनाये ही न जाते। समय पर इनका भी सदुपयोग होना चाहिए। मनमें पवित्र कामना आये, दुर्गुण-दुराचार के प्रति क्रोध हो, अपने हितैषियों के प्रति मोह हो, सद्‌गुण धारण का थोड़ा-सा अहं हो। इस प्रकार भगवान् की बनायी सृष्टि में जितने भाव हैं, उन सबका उपयोग हो सकता है। ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसका स्थान-विशेष और व्यक्ति-विशेष के लिए उपयोग करना धर्म न बन जाये। अतः ईश्वरकी सृष्टिमें किसी भी वस्तु के प्रति दोष-दृष्टि नहीं रखनी चाहिए।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–4

सेवाका स्वरूप

श्रद्धा से युक्त सेवा का नाम ही धर्म है।

स्नेह युक्त सेवा वात्सल्य है।

मधुर सेवा ही श‍ृङ्गार है।

प्रेम सेवा ही अमृत है।

सेवा संयोग में रस–सृष्टि करती है और वियोग में हित–वृष्टि करती है। सेवा वह दृष्टि है जो पाषाण–खंड को ईश्वर बना दे, मिट्‌टी के एक कण को हीरा कर दे। सेवा मृतको भी अमर कर देती है। इसका कारण क्या है? सेवा में अहंकार मिट जाता है, ब्रह्म प्रकट हो जाता है।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–5

श्रीगुरुपूर्णिमा के पर्व पर

सद्गुरु कितने कृपालु होते हैं, इसको संसारी लोग नहीं समझ सकते। जैसे माँ अपने बच्चे की टट्टी और पेशाब उठाती है, उसको नहलाती है, धुलाती है, खिलाती है, पिलाती है, वैसे ही सद्गुरु शिष्य के लिए करते हैं। असलमें चेले को सद्गुरु की जरुरत तब होती है, जब उसके अंदर कोई त्रुटि आती है, उससे कोई गलती होती है। यदि जबतक शिष्य खूब धर्माचरण करता रहे तब तक गुरु उसके साथ रहे और शिष्य से कोई गलती हो जाये तब उसको छोड़ दे तो सद्गुरु कैसा? उस अवस्था में वह शिष्य कहाँ जायेगा? उसी समय तो सद्गुरुकी जरुरत है, जिससे की वह उस गिरते-पड़ते चेलेको सँभाल ले। सद्गुरुका मतलब यही होता है की जिस दिनसे वह मिले उस दिनसे लेकर भगवान् के मिलने तक शिष्य के साथ रहे। बल्कि भगवान् के मिल जाने पर भी भगवान्के रूपमें बना रहे।

डरो मत, विश्वास करो भगवान् कभी किसी को नहीं छोड़ते हैं। सचमुच यह भगवान् का स्वभाव है। वही सद्गुरुके रूपमें भी हैं।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–6

हकदार कौन ?

असलमें भगवान् के इस राज्य में जो भी प्राणी पैदा हुआ है, वह जहाँ भी है और उसका जैसा भी ज्ञान है, जैसा भी आचार है, जैसी भी जाति है, वहीं से उस रूपमें वह परमेश्वर की ओर बढ़ सकता है। भगवान्के ही सब बच्चे हैं। वह जो भी हो जहाँ भी हो, जैसा भी हो– पतित–से–पतित हो, मूर्ख–से–मूर्ख हो, दरिद्र–से–दरिद्र हो, दीन–से–दीन हो– भगवान् का बच्चा है। ईश्वरका रास्ता अपने सब बच्चोंके लिए हमेशा खुला है। उसमें यह बोर्ड नहीं लगा है कि ''बिना इजाजत अन्दर आना मना है।'' यहाँ तो सबके लिए इजाजत है क्योंकि ईश्वर अपना घर है। अपना घर ही नहीं है, अपना आपा है। और, अपने आप के पास आने में किसी को भी किसी प्रकार की रुकावट नहीं होती।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–7

आनन्द जयन्ती पर्व पर

आनन्द क्या है ?

आनन्द अर्थात् परिपूर्ण समृद्धि। 'आ' यानि परिपूर्ण; 'नन्द' माने निरतिशय एवं निरुत्तर समृद्धि। निरतिशय– जिससे बड़ा कोई न हो। निरुत्तर– जिसके पश्चात् कोई न हो। आनन्द अर्थात् जिसमें भय न हो। यहाँ या वहाँ वियोग हो जायेगा, यह भय है। अब या तब नहीं रहेगा, यह भी भय है। यह या वह के साथ जुड़ना–बिछुड़ना है, यह भी भय है। परिश्रम करना पड़ेगा, यह भी भय है। पराधीन होना पड़ेगा, यह भी भय है। अज्ञान हो जायेगा, यह भी भय है। आनन्द निर्भय है अर्थात् आनन्दमें देश, काल, वस्तु, श्रम, अन्य पदार्थ या व्यक्ति तथा अज्ञानके भासता है। तो जो निर्गुण आत्मवादी हैं और वे जीवित हैं, जीवन्मुक्त हैं– उनको सम्पूर्ण विश्व का यह नाम–रूप अपना स्वरूप ही है ऐसा उनका अनुभव है, ऐसा उनका निश्चय है। तो उनकी दृष्टि से श्रीकृष्ण ब्रह्म नहीं है या अपने स्वरूप नहीं हैं; ये कोई दृश्य हैं, कोई जड़ हैं, मनुष्य हैं– ऐसा निश्चय तत्त्वज्ञ–पुरुष का नहीं हो सकता। तत्त्वज्ञ–पुरुष की दृष्टि में कृष्ण भी अपने स्वरूप हैं। इसलिए वे कृष्ण का या कृष्ण की भक्ति का विरोधी नहीं हो सकता– क्योंकि तत्त्वज्ञानमें किसीका विरोध है नहीं। वहाँ यदि अपन आत्मा नित्य–शुद्ध–बुद्ध–मुक्त अद्वितीय है तो श्रीकृष्ण भी नित्य–शुद्ध–बुद्ध–मुक्त अद्वितीय हैं। इसलिए, निर्गुणवाद में श्री कृष्ण और कृष्ण–भक्ति का कोई विरोध नहीं है। जो कृष्ण और कृष्ण–भक्ति का विरोध करते हैं, वे केवल व्यतिरेक का चिंतन करते हैं, वे अभी जिज्ञासु हैं, मुमुक्षु हैं। वेदांत का जो परिपूर्णतम पद है, उसको प्राप्त नहीं हैं।

तो नारायण, निर्गुण–दृष्टि से कृष्ण अपने स्वरूप हैं और सगुण–दृष्टि से कृष्ण हैं स्वयं सर्वेश्वर, सर्व–शक्तिमान्, परम दयालु परमात्मा।

सत्संग पत्रक–8

श्रीकृष्ण जन्माष्टमीका प्रसंग आ रहा है !

जन्म का मास सौराष्ट्र प्रदेश की दृष्टि से श्रावण है और माथुर प्रदेश की दृष्टि से यह भाद्र है। तो भगवान् के जन्म का महीना कौन–सा है ? '**श्रावण**'। जो अपने कानके द्वारा भगवान् की लीला–कथा का श्रवण करेगा उसके हृदय में आवेगा श्रावण–मास और उसमें होगा श्रीकृष्णजन्म ! और, '**भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवः**' भद्र और श्रवण दोनों का सम्बन्ध है। '**भाद्र**' से मतलब है मूर्तिमान् भद्र, मूर्तिमान् कल्याण। तो भगवान् श्रीकृष्ण ने भाद्र मास क्यों पसंद किया ? क्योंकि यह कल्याण रूप है। जिसको सुननेकी हम रोज अभिलाषा करते हैं, वह भद्र क्या है ? वह तो भद्रमेव भाद्र है, – यह भद्र ही भाद्र है क्योंकि इसमें भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हुआ है। इतना ही नहीं बसंत–ऋतु नहीं, वर्षा–ऋतु है। और, वर्षा–ऋतु में भी उजेली रात नहीं अंधेरी रात है, कृष्ण पक्ष है। जिसका हृदय उज्ज्वल है, प्रकाशमान है, शीतल है, उसके हृदयमें भगवान् के आने की क्या आवश्यकता है ? भगवान् के आने की आवश्यकता तो वहाँ है, जहाँ अँधेरा है। अब उसमें भी अष्टमी–तिथि है माने मध्यस्थ हो गए, पक्षपात नहीं है। यह तिथि भी जया–तिथि है। तो अपने भक्तों के हृदय में जो काम, क्रोध, लोभ, मोह – ये जो शत्रु बढ़ गए हैं उन शत्रुओं पर जय प्राप्त करानेके लिए जया–तिथि में आए। ये लीला–पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण को खाली घर की जरूरत नहीं, ये भीड़–भाड़ में भी

पैदा होने वाले हैं। जहाँ घोर अन्धकार है वहाँ श्रीकृष्ण का प्रकाश होता है। लोगों के हृदय में से घोर अन्धकार को दूर करनेके लिए आप प्रकट होते हैं।

श्रीकृष्ण-जन्म को हम ऐतिहासिक-दृष्टि से नहीं देखते हैं। हम तो भक्तों के हृदय में जो श्रीकृष्ण का जन्म होता है, उस दृष्टि से विचार करते हैं। हमारे अंत:करण की ऐसी परिस्थिति बन जाये कि हमारे अंत:करण में ही भगवान् का जन्म हो जाए, आविर्भाव हो जाए, भगवान् प्रकट हो जायें- इस दृष्टि से भगवान् की चर्चा करते हैं। इसके लिये हम भगवान् की जन्म-जयंती मनाते हैं। अभी जन्माष्टमी आ रही है। निश्चय ही आपके अन्दर संसार की जीत नहीं होने देगी, भगवान् की जीत करावेगी।

तो आओ, जन्माष्टमी मनावें !

'नन्द के आनन्द भयो, जै कन्हैया लाल की'।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–9

हाथ वहीं तक डालो जहाँ से खींच सको। किसी से उतना ही सम्बन्ध जोड़ो, जितने से अपना मन बेकाबू न हो जाये, अपने को खींच सको, वापस आ सको। बिना अपने आश्रय में लौट संसार में सुख–शान्ति नहीं मिलती है।

ईश्वर से बढ़कर अपना और कोई आपका इस संसार में नहीं है। संसार के विषय जब आपको खींचकर संसार में ले जाना चाहें तब आप ईश्वर रूपी खम्भेको पकड़ लीजिये– विषय आपको नहीं खींच सकेंगे। एक को मजबूती से पकड़ लेने पर दूसरे सब छूट जाते हैं।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

भक्ति भगवदाकार–वृत्ति होने के कारण प्रारब्ध–जन्य सुख–दु:खों का भान नहीं होने देती, नवीन वासनाओं और दोषों को आने नहीं देती, संसार में होने वाले राग–द्वेष को काटती है, संचित कर्म–राशि को भगवान् की ओर उन्मुख करती है, क्रियमाण और आगामी कर्म को सुधारती है, वैराग्य और शमदमादि साधन–संपत्ति को बढ़ाती है। पदार्थ–शोधनमें स्पष्टता लाती है और विद्या की उत्पत्ति होकर अविद्या की निवृत्ति होने पर अनंत–तृप्ति के रूप में यावज्जीवन निवास करती है।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–10

श्रीराधाअष्टमी पर

जैसे दत्तात्रेय अवधूति के अवतार हैं, व्यास लोकहितकारी ज्ञान के अवतार हैं, कपिल योग के अवतार हैं, राम धर्म-मर्यादा के अवतार हैं। माने पूर्ण सृष्टि में किसी भी व्यक्ति के रूपमें जब किसी का उदय होता तो वह एक भाव की प्रधानता से होगा। यदि उस भाव को समझ लेंगे तो उसके स्वरूप को समझ जायेंगे और उसके भाव को नहीं समझें तो उसका स्वरूप समझ में नहीं आता है।

यह जो राधारानी हैं, ये प्रेम की मूर्त्त रूप हैं। राधारानी माने प्रेम और प्रेम माने राधा। ये प्रेमिका भी हैं और प्रेयसी भी हैं; माने प्रेम की आश्रय और विषय दोनों हैं। श्री वृन्दावनधाम में गाते हैं,

आनन्द की आह्लादिनी श्यामा,
आह्लादिनी के आनन्द श्याम,
एक सरूप सदा द्वै नाम।

नाम दो हैं, रूप भी दो हैं- कभी ये, कभी वो; कभी वो, कभी ये! पर स्वरूप एक है। यह बिलकुल अद्वैत-वेदांत से मिलती हुई बात है। रूप दो होने पर भी तत्त्व एक ही रहता है। घड़ा बड़ा है कि छोटा है- माटी तो एक ही है। माटी तो घड़े का स्वरूप है और घड़े का जो गोल-गोल पेट बड़ा-सा और गला छोटा-सा- यह सब उसका आकार है। अथवा चौड़े खुले मुँह का सकोरा होता है, वह घड़े से छोटा है। तो आकार में छोटा-बड़ा होता है, माटी सबमें एक ही होती है। रूप में परिवर्तन होने से या नाम में परिवर्तन होने से तत्त्व में परिवर्तन नहीं है। इसलिए तत्त्व के स्वतः सिद्ध स्वरूप में नामरूप विवर्त हैं। नारायण, जो आनन्द का अर्थ है वही आह्लाद का अर्थ है। वस्तुतः श्रीराधारानी, श्रीकृष्ण अभिन्न ही हैं। भेद-भाव की माया छायामात्र भी नहीं।

सत्संग पत्रक–11

हमको एक महात्मा ने कानमें एक मन्त्र दिया था और हम आपको खुले में बता रहे हैं। उन्होंने बताया था कि यदि ईश्वर सब है तो उसकी प्राप्ति का साधन भी सब है। जो सब जगह रहता है वह सबसे मिलता है, सबको मिलता है, सब समय मिलता है, सब जगह मिलता है। अगर तुम्हारी साधना में इसका समावेश नहीं है तो तुम फिर ईश्वर को काट–पीटकर अलग फेंक रहे हो। नारायण, विवेक करना बात दूसरी है और ईश्वर को व्यवहार में से निकालकर बाहर फेंक देना, बात दूसरी है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

जो हमारे हृदय में मालूम पड़ने वाला ईश्वर है, उसको हड्डी–माँस–चाम का मानना केवल बेवकूफोंका काम है। शास्त्र ने हमारे हृदय में सारी भरी हुई आकृतियों को अलग करके एक दिव्य आकृति प्रकट की है और हमारी समग्र चेतनता उसके प्रति समर्पित है। और, जिसमें हमारी सम्पूर्ण चेतना अवतीर्ण हो रही है– वह तो हमारा साक्षात् परमेश्वर है। इसको किसी ने गढ़ा नहीं है। इसमें बाहर से रंगरोगन लगा नहीं है– यह तो स्वत: सिद्ध, स्वत: स्फूर्त है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

अरे, जहाँ देखो भाई ईश्वर को मिलाकर देखो ! जो चीज देखो, उसमें ईश्वर को भर दो और फिर देखो ! देखो आपका आनन्द कैसे बढ़

जाता है। एक बच्चा देखता है कंगन। तो उसकी चमक देखकर वह खुश होता है। और, एक माँ देखती है कि अरे, यह तो सोनेका है- इसमें हीरे जड़े हुये हैं। तो हीरे और सोने की कीमत समझ कर माँ खुश होती है। नारायण, आप बच्चे की तरह श्रीकृष्ण की केवल शक्ल-सूरत मत देखिये। उसमें जो सच्चिदानन्दघन तत्त्व आकृति धारण कर प्रकट हुआ है, उस तत्त्व को देखिये ! तब देखो कितना आनन्द आता है !

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–12

भगवान् की इच्छा पर सर्वथा निर्भर हो जाना अथवा उसके लिए व्याकुल हो जाना- भगवत्प्राप्ति के बस दो ही उपाय हैं। आप विचार करो- दोनों में से कौन-सा उपाय आपने अपनाया है ? व्याकुलता का मार्ग निरापद् है, यदि सच्ची व्याकुला हो। निर्भरता के मार्ग में कोई विघ्न नहीं है, यदि स्वार्थ-परमार्थ सबके लिए समान निर्भरता हो। आप दोनों की परीक्षा करके देख लो। यदि इनमें से कोई एक भी आपके जीवन में उतर रहा है तो आपको कोई भय नहीं है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

माँ अथवा सत्पुरुष बच्चे को तभी प्रेम से सम्हाल कर रख सकते हैं जब वह अनन्य समर्पण के भाव से उनके प्रति निर्भर हो जाय। शरणागति में योग्यता अपेक्षित नहीं है, परन्तु अनन्य विश्वास की आवश्यकता होती है। भटकता हुआ विश्वास जीवन में किसी की कृपा या संकल्प को मूर्त होने में बाधा डालता है। अविश्वास हृदय में प्रकट होते हुए ईश्वर के आकार को आवृत कर देता है। अत: अपने मन को विश्वास से भरपूर रखकर ही आगे बढ़ना होता है।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–13

आदरणीय सत्पुरुषों के प्रति आदर–भक्ति और पूज्य भाव जरूर रखो। किन्तु उनके समक्ष 'तुम कुछ भी नहीं हो' ऐसी आत्मग्लानि न महसूस करो। ईश्वर तो सर्वत्र बैठा है। इसलिए सामने वाले में ही ईश्वर बैठा है और हममें नहीं, यह बात ठीक नहीं है। सर्वव्यापक परमात्मा तो सामने बैठे हुए व्यक्ति में भी बैठा है और हममें भी बैठा है। अत: हमें इस तरह से व्यवहार करना चाहिए कि अपने में बैठा हुआ ईश्वर हमारे सद् वर्तन से, हमारे सद्भाव से और हमारे उच्च जीवन से हममें ही अनेक को दर्शन दे।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

आप मानें या न मानें, जानें या न जानें, असल में आप वही हैं जो मैं हूँ। आप मुझसे छोटे भी नहीं हैं, बड़े भी नहीं हैं, पराये भी नहीं हैं। आपका ज्ञान, आपका आनन्द, आपका स्वरूप, आपकी सत्ता–ये सब इतने अद्भुत हैं कि आपको चाहने का मन हो जाता है.......... आप अपने को पहचानते नहीं हैं इसलिए आप अपना महत्त्व समझ नहीं पाते।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–14

आप बार–बार क्या दुहराते हैं ? आपके भाषण में, संकल्प में, चेष्टा में, आचरण में, व्यवहार में, भोजन आदि में पुनः पुनः किसका अभ्यास होता है ? निश्चय है कि आप अपने अभ्यस्त विषय में रम जायेंगे। आपका सुख एक सीमित परिधि (घेरे) में बंदी हो जायेगा। आप उसके कारागार से मुक्त नहीं हो सकेंगे। अतः सावधान रहना आवश्यक है। सतत सावधानी सुखी जीवन का रहस्य है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

दुःखी से घृणा मत कीजिये। घृणा द्वेष का पिघला हुआ रूप है।

पापी को मारिये मत। हिंसा द्वेष का विकृत रूप है।

सुखी को देखकर अपने को हीन मत समझिये। यह द्वेषमूलक आत्महत्या है।

पुण्यात्मा से ईर्ष्या मत कीजिये। ईर्ष्या द्वेषाग्नि की लपट है।

नारायण, सच तो यह है कि किसी से भी द्वेष करना आत्महत्या ही है। क्योंकि उसके द्वारा आप अपने को ही दुःखी करते हैं। आप अहिंसा का व्रत लीजिये। यह तपस्या आपके जीवन को सुखी कर देगी।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–15

शरदपूर्णिमा पर्व पर

चलो वृन्दावन !

वृन्दावन कहाँ ? अरे यहीं। अपने मनमें देखो, बालू का बहुत बड़ा पुलिन है और उसमें एक बालू सांवरा है और एक बालू गोरा है। जितने बालू हैं– करोड़ों, अरबों, असंख्यों, अनन्तों– उनमें एक गोरा, एक काला, एक गोरा, एक काला। सांवरा–सलोना बृजराजकुमार और गोरी वृषभानु किशोरी–इनके मिलने से रास हो रहा है। बायें वे हैं तो दायें ये हैं, दायें वे हैं तो बायें ये हैं। केवल रास, रास, रास के सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

नारायण, यह जो वल्लभाचार्य जी महाराज संसार को मिथ्या कहते हैं और श्रीशंकराचार्य जी महाराज संसार और जगत्– दोनों को मिथ्या कहते हैं, उसका अर्थ यही है कि यह दीखता तो ज्यों–का–त्यों है, परन्तु भगवान्–ही–भगवान् दिखते हैं। इसको तुम जगत् सा संसार मानते हो– यह तुम्हारी भूल है, मिथ्या–दृष्टि है, अविद्या है। जगत् भगवान् है, परन्तु भगवान् से अलग माना हुआ जो जगत् है वह मिथ्या है। जगत्व मिथ्या है, जगत् नहीं। भेद–भ्रांति मिथ्या है, भेद–प्रतीति नहीं। इसलिए, वे लोग वेदांत से कोसों दूर छूट जाते हैं जो सचमुच इस प्रतीति को ही निवारण करनेका प्रयास करते हैं। ये अखण्ड–सत्ता के आकार खेलते हुए, सिमटते हुए दिखाई पड़ रहे हैं। यह अखण्ड चेतन ही अनेक रूपमें स्फुरित हो रहा है। यह अखण्ड आनन्द ही समुल्लसित हो रहा है। यह जगत् नहीं है, यह संसार नहीं है, ये सब भगवान् हैं। तत्त्व अद्वय है। देश

चेतन को चलनेके लिए नहीं है। काल चेतन के मरनेके लिए नहीं है। वस्तुएँ चेतनको अलग-अलग करनेके लिए नहीं हैं। ये सब चेतन के प्रकाश हैं, चेतन के विकास हैं, चेतनके स्वच्छन्द आकार हैं, चेतनकी स्वच्छन्द प्रतीतियाँ हैं, चेतन की थिरकन हैं। और, चेतन निर्विकार है, एकरस है, अद्वितीय है और अपना आत्मा है। अपने सिवाय दूसरा कुछ नहीं है।

नारायण, इस पृष्ठभूमि में होती है रास-लीला। अब इस भूमिका में वृंदावन की भूमि साक्षात् ब्रह्म है। वहाँ के वृक्ष ब्रह्म हैं। वहाँ की लता ब्रह्म है। वहाँ की घास ब्रह्म है। वहाँ की हरिणी, गाय ब्रह्म हैं। वहाँ के पक्षी ब्रह्म हैं। वहाँ की पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ब्रह्म है। वहाँ के चेतन-जड़ सब ब्रह्म हैं, परमात्मा हैं और इसी ब्रह्म-भूमि में श्रीकृष्ण ब्रह्म की ब्रह्ममयी रास-लीला होती है।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–16

आप पर किसी ने क्रोध किया तो आप यह मत देखिये कि उसका क्रोध करना गलत है कि सही । यह देखिये कि मुझ में ऐसा कौन–सा दोष है जिसके कारण उसके हृदयमें क्रोध का संचार हो गया। यदि उसका क्रोध सकारण है तो अपने में से वह कारण– वह दोष दूर करना चाहिए। यदि अकारण है तो ईश्वर ने कृपा करके आपको सहिष्णुता बढ़ानेका सुअवसर दिया है ।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

यदि कोई गलत काम करता हो तो उस पर नाराज मत होइए, अपना मन मत बिगाड़िये, स्वयं शांत रहकर उसकी समझ बदलनेका प्रयास कीजिये। जब आत्मीयता और प्रेमसे आप उसको समझा देंगे तो अपनी गलती समझ जायेगा और छोड़ भी देगा। डाँट–फटकार से सामने वालेका मन विद्रोही हो जाता है और अधिक भड़क उठता है। क्रोध से गलती नहीं मिलती, प्रेम से मिटती है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

जो साथ रहनेवालों की दृष्टिमें साधु नहीं है, वह दूर रहनेवालों की दृष्टिमें कभी साधु नहीं हो सकता।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–17

अपने हितैषी के प्रति जो श्रद्धा, विश्वास अथवा सेवा है, वह उसका उपकार करनेके लिए नहीं है। मैं अपनी सेवा के द्वारा उसको उपकृत करता हूँ या सुख पहुँचाता हूँ, यह भावना भी अपने अहंकार को ही आभूषण पहनाती है। विश्वास या श्रद्धा दूसरे को अलंकृत करनेके लिए नहीं होती, अपने अन्तःकरण की शुद्धि के लिए होती है। अतएव सेवा करते समय यह नहीं देखना चाहिए कि हम किसकी सेवा कर रहे हैं; भाव यह होना चाहिए कि सेवा के द्वारा हम अपना स्वभाव अच्छा बना रहे हैं अर्थात् अपने स्वभाववश आलस्य, प्रमाद, अकर्मण्यता आदि दोषों को दूर कर रहे हैं। यह सेवा हमारे लिए गंगाजल के समान निर्मल एवं उज्ज्वल बनानेवाली है। सेवा स्वयं में सर्वोत्तम फल है। सेवा केवल उपाय नहीं, स्वयं उपेय भी है। यदि आपकी निष्ठा सेवा में हो गयी तो कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रहा।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–18

दीपावली पर्व पर

उतावली नहीं करना, शनैः शनै मार्ग में चलना।
ज्ञान सूर्य की रोशनी से चौंधियाना नहीं।
श्याम–सोम की ज्योत्सना में स्नान करना।
आनन्द मंगल मनाना।
बुध की बुद्धि लेना।
गुरु की आज्ञा मानना।
तुम्हारा हृदय शुक्ल पक्ष बने।

यह सदा ही अनुभव करना कि भगवान् की कृपा और प्रेम तुम पर बरस रहे हैं। क्योंकि आशा और उत्साह ही जीवन की ज्योति है।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–19

मनमें शांति आवे– इसके लिए श्रीमद्भागवत में भगवान् स्वयं बताते हैं–

अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्।
अर्हयेद् दानमानाभ्यां मैत्र्याऽभिन्नेन चक्षुषा।। (३/२९/२७)

'सबके हृदय-मंदिर में रहनेवाला मैं ही हूँ– यदि तुमसे बने तो दान करो, दान न बनता हो तो सम्मान करो और सम्मान भी न बने तो सबको मैत्री की दृष्टि से देखो और सबमें एक ही आत्मा, एक ही परमात्मा है– यह अभेद-दृष्टि रखो। माने एक-एक शरीर भगवान्का मंदिर है और सबके हृदय-मंदिर में भगवान् विराजमान रहते हैं और अपना घर बनाकर बैठे हैं– '**हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**'।

अद्भुत है यह उपाय। बन सके तो आप इसको अपने जीवन में प्रत्यक्ष ले आओ।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–20

हमारी जो प्रीति है, वह हमारे हृदय में विषमता उत्पन्न न करे और कहीं मोहका रूप धारण करके फँस न जायें, कहीं राग करके उसके रंग में रंग न जायें और कहीं द्वेष करके आग में जलने न लग जायें, इसके लिए हमें सावधान होकर विचार करना चाहिए कि जो सबमें एक है– उसमें हमारी प्रीति हो। जो सबमें एक है उसका हमें ज्ञान हो तथा जो सब में एक है, उसकी दृष्टि से हमारी सेवा होनी चाहिए।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

मित्रता करो, करुणा भी करो। लेकिन जिससे मित्रता करो, जिस पर करुणा करो, उसको भगवान् का ही समझो, अपना मत समझ बैठो। नहीं तो राजा भरत की जैसी हरिण में आसक्ति हो गयी थी, वैसे हो जायेगी। साधु सावधान!

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

अपनी बुद्धिमें किसी को नीच–ऊँच मत करो। अपनी बुद्धिमें समता बनी रहनेका अर्थ है– लक्ष्मी बनी रहना, श्री बनी रहना, शांति बनी रहना। हमेशा आपके दिल की शोभा, सुन्दरता बनी रहे। दिल की सुन्दरता क्या है ? 'सम'। संगीत की सुन्दरता भी सम ही है। नारायण, सम के बिना आपका दिल बेसुरा है। अतः **'सर्वत्र समबुद्धयः'।**

❖◆❖

सत्संग पत्रक–21

अद्वैत–ज्ञान में तीन बात

1. कार्य–कारण की एकता– यह राग–द्वेष को मिटानेके लिए है।
2. सारे कर्म परमात्मा को समर्पित– यह कर्तापन की भ्रांति, अस्मिता को मिटाने के लिए है।
3. संसार की सारी वस्तुएँ जो हैं, वह अपनी और अपने लोगोंकी नहीं हैं, सबकी हैं– यह ममता को मिटानेके लिए है।

नारायण, ममता, अहंता और राग–द्वेष– इन तीनों को मिटानेके लिए तुम्हारा अद्वैत–ज्ञान यदि अविद्या को मिटाता है, तब तो ठीक है। नहीं तो तुम्हारा ज्ञान केवल जबानी जमा खर्च है महाराज ! उसकी कोई कीमत नहीं है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

जिसको अपनी स्थितिसे, गतिसे, मतिसे असन्तोष नहीं होगा, वह उससे निकलनेका प्रयास ही कैसे करेगा ? इसीसे, पहले वैराग्य होता है, तब जिज्ञासा होती है। अत: जिस स्थितिमें हम पड़े हैं वह सम्पूर्ण नहीं, यह ज्ञात होना आवश्यक है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

अपने को ज्ञानी समझकर व्यवहार नहीं किया जाता। बहुत सावधान रहनेकी आवश्यकता है एक जिज्ञासु को। किसी व्यक्ति को और स्वयं को ज्ञानी समझकर व्यवहार करना ही अज्ञान है।

सत्संग पत्रक–22

आराधन महोत्सव पर्व पर

‘चरैवेति’

आशावान् होकर दृढ़ता से अपने पथ पर चलते रहिये। पहुँचना सिद्धि नहीं है, चलना ही सिद्धि है। ‘चरैवेति’। जीवन में जो मिलता है, वह सपना है। सपने बदलते रहते हैं, जीवन चलता रहता है। यदि एक क्षण भी ठीक–ठीक मनकी कड़ी भगवान् के साथ जुड़ जाये तो सारा दिन आनन्दमय हो जाता है। आप निराश न हों, उदास न हों। अपने जीवन को कर्त्तव्य–पथ पर अग्रसर करें और अपने प्रत्येक कर्म के द्वारा सर्वात्मा प्रभु की आराधना करें।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–23

अविद्या–निवृत्तिके लिए एक क्षणके लिए जो सद्गुरु के अनुग्रह की वृष्टि है, एक क्षण का जो सद्गुरु समागम है वही कल्याण कर देता है। उसके पहले तो उनकी कृपा प्राप्त करनेके लिए उनकी आज्ञाका पालन होता है। आज्ञा–पालन ही सबसे बड़ा धर्म है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

सच्चा गुरु वह है जो इस सम्पूर्ण विश्व को आत्म–स्वरूप अनुभव करता है। ऐसे गुरुदेव के दर्शन, स्मरण मात्रसे हृदय पवित्र हो जाता है और सत्संग हो जाय तब तो अज्ञानकी निवृत्ति होकर परमानन्द स्वरूप आत्मतत्त्व का साक्षात्कार ही हो जाता है।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–24

गीता जयन्ती

श्रीमद्भगवद्गीता हमारे इसी जीवन को नगद माल देने के लिए है, उधार माल देने के लिए नहीं है। यह बात आप अपने ध्यान में रख लीजिये कि गीता इस लोक में सच्चा जीवन, सच्चा ज्ञान और सच्चा सुख देने के लिए प्रकट हुई है। भगवान् श्री कृष्ण इसको निकालते थोड़े ही थे ''**या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता**'' स्वयं श्रीमुख से प्रकट हुई। माने श्रीकृष्ण का ऐसा ज्ञान था, ऐसा अनुभव, ऐसा बोध था जिसके लिए वे स्वयं कहते हैं ''**गीता मे हृदयं पार्थ**'' हे अर्जुन, गीता मेरा हृदय है माने इसमें जो बात है, मैं उसी में स्थित रहता हूँ। और, भगवान् किसी के सामने उसको प्रकट करना नहीं चाहते थे। पर आपलोग जानते होंगे कि ऐसी भी गाय होती हैं तो जब दूध दोहनेवाला आता है तो दूध को छिपा लेती हैं और जब उनका बछड़ा सामने आता है तो उनके थन से स्वयं दूध झर–झर गिरने लगता है। इसी प्रकार अर्जुन के समक्ष आने पर भगवान् श्रीकृष्ण के हृदय में छिपी हुई गीता अपने आप फूट पड़ी, निकल पड़ी।

यह कोई दर्शनशास्त्र नहीं है, न वेद है, यह है दो मित्रों की बातचीत। अर्जुन को क्या करना चाहिए उसके लिए यह कोई गुरु आज्ञा नहीं है, वेद–आज्ञा नहीं है, शास्त्राज्ञा नहीं है। यह तो मित्र को मित्र की सलाह है। आप इस दृष्टि से देखो– अद्भुत है।

कुरुक्षेत्र का मैदान है, दोनों और सेनाएँ खड़ी हैं और बीच में अर्जुन के रथ पर भगवान् श्रीकृष्ण बैठे हैं और अर्जुन के कंधे पर हाथ रख कर बोल रहे हैं,

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।।

यह देखो क्या बढ़िया बात है। एक मित्र की फटकार है- क्यों रे अर्जुन! बात करता है पंडितों की-सी और काम करता है मूर्खों जैसा। अरे यार, बात तो तू बहुत बढ़-बढ़कर करता है; लेकिन काम तो बेवकूफों जैसा कर रहा है। शोच करना- यह विद्वान् का काम नहीं है। एक विद्वान् के जीवन में यदि शोक बना रहा तो उसकी विद्या व्यर्थ हो गई। विद्या इसीलिए होती है कि हमारे दिल पर शोक असर न डाले, मोह असर न डाले, भय असर न डाले। निमित्त हों, पर उनका असर हमारे दिल पर न हो- इसी के लिए होती है विद्या। जो अवश्यंभावी भाव है उसके लिए शोक क्यों करना! तो नारायण, इस भगवद्वाणी के द्वारा आपके जीवन में धारण करने की बात यह है कि आप अपने जीवन में शोक मत आने दीजिये। क्योंकि शोक आपके आनन्दस्वरूप के सर्वथा विपरीत है।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–25

वास्तविकता यह है कि जन्म से ही हमें अपने दोष अस्वीकार करके दूसरों के सिर मढ़ देने की आदत पड़ गयी है, जिसके कारण हम अपने प्रमाद की ओर दृष्टिपात न करके, उसे दूर न करके ईश्वर, काल और प्रारब्ध पर मिथ्या दोष लगाकर अपने अनिवार्य कर्त्तव्य प्रभु–प्राप्ति की चेष्टा माने साधन से विमुख रहनेकी भूल या जी चुराने की चेष्टा करते हैं। इसका प्रतीकार होना चाहिए। अपनी सारी शक्ति–बल– अपने पास जो कुछ है, सबका प्रवाह उसी ओर कर देना चाहिए। प्रभु की अपार करुणा, प्रेम, वात्सल्यका रसास्वादन करनेके लिए अपने हृदय को सर्वदा उन्मुक्त कर देना चाहिए।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

दोष में रस आता है तभी उन्हें धीरे–धीरे छोड़ने की योजना बनायी जाती है। कड़वी वस्तु थूकनेमें विलम्ब नहीं किया जाता। दोष दु:ख है, परन्तु अभ्यास–संस्कार से जनित वासना के कारण अर्थात् बार–बार उन्हें दोहराने से वे स्वादु लगने लगते हैं। सावधान ! यदि आप इन्हें दोष रूप से समझते हैं तो ऐसी अवस्था में आप एक झटके में ही इन्हें उड़ा दीजिये। आपको इन्हें छोड़ देनेका पूर्णत: अधिकार है, सामर्थ्य है।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–26

भगवद्-शरण क्या है ?

'शरण' शब्द शृ हिंसायाम् धातु से बनता है और इसकी विशेषता यह है कि इसमें सबका- यहाँ तक कि अपना भी संहार हो जाता है और केवल भगवान् रह जाते हैं। '**मैं मर जाऊँ, तू प्रभु जीवे**'- हे प्रभु, मैं मर जाऊँ और तू जीता रह। इसको दूसरी तरह से समझिये- सब रूप में भगवान्-ही-भगवान्। भगवान् के अतिरिक्त कुछ प्रतीत ही न हो। उनके अतिरिक्त जो कुछ रहता है, सब मर जाता है। जब एक मात्र भगवान् रह जाते हैं, तब उसका नाम 'शरण' होता है। वस्तुतः भगवान् का ही एक नाम शरण है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

भगवान् सेवक बनकर भी जीव का कल्याण करते हैं। श्री उड़िया बाबा जी महाराज कहा करते थे कि सृष्टि में सबसे बड़ा सेवक ईश्वर है। वही सबको बुद्धि देता है, शक्ति देता है, प्रेरणा देता है। वही सबको भोजन-पानी देता है और वही सबका पालन-पोषण करता है। ईश्वर ही सबकी सेवा करता है। और, ईश्वर की ईश्वरता इसी में है कि वह सबका सेवक है। तो इस ईश्वर का अज्ञान, ईश्वर की विस्मृति अथवा ईश्वर की विमुखता सबसे बड़ा पाप है।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–27

साधन वहीं से प्रारम्भ होता है, जहाँ स्थिति होती है। **‘भूमौ पतित पादानं भूमिरेव परं बलम्’**– आदमी जिस धरती पर गिरा हुआ होता है, उसी धरती का सहारा लेकर उठता है। इसलिए जब हम धन में आसक्त हैं, इन्द्रियों के भोग में आसक्त हैं, संग्रह में आसक्त हैं, तब हमारी साधना धन से, भोग से प्रारम्भ होनी चाहिये। हमें यह विचार करना चाहिये कि धन में हम कौन–सा धन लें और कौन–सा न लें। यदि हम धन लेते हैं तो उसको शुद्ध करने की प्रणाली क्या है? हम इन्द्रियों से भांति–भांति के भोग भोगते हैं तो इन्द्रियों को शुद्ध करनेकी प्रणाली क्या है ? हम शरीर से बहुत सारे काम करते हैं तो शरीर को शुद्ध करने की प्रणाली क्या है ? यह जो शोधन की प्रक्रिया है– वह ऊट–पटांग नहीं हुआ करती। ठीक ढंग से उसको चलाना पड़ता है।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–28

साधना परमात्मा बननेकी नहीं है, न आत्मा बनने की है, न जीवात्मा बनने की है, न मुक्त बनने की है। साधना असलमें इस मनुष्य जीवन में महात्मापन के अवतरण के लिए है। परमात्मा-पना तो आत्मा का स्वत: सिद्ध है। परन्तु महात्मापने में जो बाधा पड़ गयी है– काम, क्रोध, लोभ, मोह से– उसको हटाने के लिए साधना है। श्रीउड़ियाबाबा जी कहते थे कि बेटा, परमात्मा तो सब है– इसको महात्मा लोग जानते हैं। परन्तु, महात्मा तो कहीं-कहीं है, कोई-कोई है। **'वासुदेव सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः'।**

तो नारायण, जो साधन से सिद्ध होता है सो महात्मा है और जो स्वत: सिद्ध है, सो परमात्मा है। हमारे सम्पूर्ण साधनों का अभिप्राय है कि हमारे जीवन में से जो काम, क्रोध, लोभ, मोह मूलक प्रक्रिया है– वह निवृत्त हो।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–29

प्रेरणा का स्रोत

आपको अंत:प्रेरणा कहाँ से प्राप्त होती है– क्या बाहर से देखे–सुने विषयों से ? तब तो निश्चय ही आपकी प्रेरणा सर्वदा बदलती रहेगी। क्योंकि दर्शन, श्रवण में अंतर पड़ता रहेगा, प्रेरणा के रूपमें भी परिवर्तन होता रहेगा। संकल्प, विचार, निश्चय और प्रवृत्ति के भी अनेक आकार आते–जाते रहेंगे। परन्तु यदि आप बाह्य पदार्थों के संस्कार से मुक्त अन्तर्यामी से प्रेरणा प्राप्त करेंगे और उस अर्न्तयामी से ही अपने को और अपनी मति को मिला कर रखनेका प्रयास करेंगे तो आपकी इच्छाओं में एकरूपता आ जाएगी और आपको स्थिरता तथा उस अर्न्तयामी, जो कि सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् है– से एकता प्राप्त हो जाएगी तथा आप स्वयं सर्वज्ञता एवं सर्वशक्तिमत्ता के भण्डार हो जायेंगे।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–30

ईश्वर माने पूर्णता। जिसकी सत्ता पूर्ण, जिसकी चित्ता पूर्ण और जिसका आनन्द पूर्ण– वह ईश्वर। जिसमें द्वैत का नामोनिशान नहीं– वह ईश्वर। जहाँ टुकड़े हैं ही नहीं– वह एक ईश्वर है। इस ईश्वर का अज्ञान, ईश्वर की विस्मृति अथवा ईश्वर की विमुखता सबसे बड़ा पाप है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

हमारे सारे जगत् का कण–कण प्रभु में स्थित है, श्‍वास–प्रश्‍वास और जीवन–मरण सब उन्हीं के अंदर, उन्हीं की प्रेममयी प्रेरणा से चल रहा है। यह सब उनका प्रेममय, आकर्षणमय स्वरूप ही है। उन प्रेम, आनन्द और शांति की अनंत मूर्ति में वियोग, विकर्षण तथा क्लेश की सत्ता ही नहीं है। उनसे इनका स्पर्श ही नहीं है और उनकी अनन्तता के कारण ये हैं ही नहीं; ये मिथ्या हैं, अज्ञान जन्य हैं, कल्पना मात्र हैं, प्रतीतिमात्र हैं।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

तुम्हारा फोन तो अहंता के गलत नंबर से जुड़ गया है। इसे काट दो तो स्वतः ही भगवान् के नम्बर से जुड़ जायेगा। अहंता को फेंका कि भगवान् मिले।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–31

हम लोग जो कुछ भी करते हैं उसमें ईश्वर का हाथ सन्निविष्ट है और यह बात हम लोगों को ज्ञात रहनी चाहिए। ईश्वर का हाथ होना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना महत्त्वपूर्ण उसका ज्ञात रहना है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

भगवान् तो विपत्ति के आने में कर्म का फल देते हैं, परन्तु जो अपने हृदय में भगवान् की स्मृति रखता है उसको विपत्ति का अनुभव नहीं होता। अपने द्वारा किये हुए भगवत्स्मरण में यह सामर्थ्य है कि वह विपत्ति को मिटा दे। हृदय में भगवान् विद्यमान होना एक बात है और भगवान् का स्मरण होना दूसरी बात है। वस्तुतः भगवान् की स्मृति ही सब दुःखों को दूर करती है। अतः हमें चाहिए कि हम उसे निरन्तर बनाये रखें।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

क्या हो रहा है, मिल रहा है, किया जा रहा है, बोला जा रहा है– इसकी ओर न देखकर सर्वत्र परमेश्वर का करुणामय, हितमय वरद हस्तकमल ही देखना चाहिए। उसकी उपस्थिति में, उसकी आँख के सामने जो कुछ हो रहा है, उसमें अनिष्ट की सम्भावना ही क्या है ?

❖◆❖

सत्संग पत्रक–32

ईश्वर निराकार भी है और साकार भी है। किन्तु सर्व–व्यापक निराकार ईश्वर से संसार का दु:ख दूर नहीं होता। इसके लिए तो उसे साकार और एकदेशीय ही होना पड़ता है। वह साकार होकर ही दुष्टों का संहार एवं धर्मकी संस्थापना करता है। देखो, अग्नि सर्वव्यापक है, किन्तु उससे प्रकाश नहीं होता। जब वह एक जगह सिमट कर बिजली के बल्ब में साकार रूप से व्यक्त होती है तो कैसा प्रकाश हो जाता है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

भक्त का दु:ख तो भक्ति के बल से दूर हो जाता है, क्योंकि भक्त एक अबोध बालक के समान है, अत: निष्काम भक्त का दु:ख भगवान् स्वयं दूर कर देते हैं। किन्तु ज्ञानी दु:ख को सहन करता रहता है, वह उसकी निवृत्ति की कोई चिंता नहीं करता। क्योंकि वास्तव में वह तो द्रष्टामात्र है सुख–दु:ख से उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। ज्ञानी अपने से भिन्न सबको भूल जाता है और भक्त अपने आप को ही भुला देता है।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–33

संन्यास जयन्ती

संन्यास - मंत्र का अर्थ है 'सत्त्व-शुद्धि'। न मैं, न मेरा। न कोई प्रयत्न। सत् की शुद्धि माने सत् में नामरूपात्मक जो भी है, उनका परित्याग। ऐसी सत्ता जिसमें न नाम, न रूप, न क्रिया। उसकी उपलब्धि संन्यास–योग से होती है। सत्त्व की शुद्धि में संन्यास हेतु है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

तुमने अपने 'मैं' को 'मेरा' रूपी रस्सी के साथ जगह–जगह बाँध रखा है और वे सब तुम्हें अपनी–अपनी ओर खींचते रहते हैं और तुम परेशान होते रहते हो। जरा अपनी उस रस्सी को काट दो। तुम मुक्त हो जाओगे, परमेश्वर से एक हो जाओगे।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–34

'इच्छा'

इच्छा दो प्रकार की होती है- (1) वस्तु सामग्री सामने आने पर भोगने की इच्छा और (2) वस्तु सामने न होने पर सुन–सुनाकर ही भोगने की इच्छा। इन दोनों प्रकार की इच्छाओं को त्याग देना चाहिए। यदि मनमें कोई इच्छा रख कर भजन किया जायेगा तो इससे इच्छा की ही पुष्टि होगी। इच्छा की निवृत्ति तो इष्टाकार–वृत्ति होने से ही होती है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

'नियम'

मन नियम पालन से रुकता है। यदि हम नियम पर दृढ़ रहें तो मन हमारा क्या कर सकता है ? नियम को परमात्मा देखता है। हम लोग नियमपर दृढ़ नहीं रहते, सन्ध्या–वंदन तक का नियम जाता रहा। भजन करनेके लिए नियम की बड़ी आवश्यकता है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

'भजन'

ईश्वर का भजन हर हालत में करना चाहिए- विश्वास हो तब भी और शंका हो तब भी। विश्वास होगा तब तो भगवान् मिलेंगे ही और शंका होगी तब भी भजनसे विश्वास मिल जायेगा और फिर भगवान्। अतः भजन कीजिये। पहले भजन करोगे तब भगवान् मिलेंगे। भगवान् मिलेंगे तब भजन करेंगे- ऐसा नहीं होना चाहिए।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–35

जन्म-जन्मान्तरों से हमारा विषयों में अनुराग हो रहा है, इसीसे भगवान् में अनुराग नहीं होता। भगवान् में पूरा अनुराग हुआ कि संसार छूटा; जैसे निद्रा का अंत और जागना दोनों एक साथ ही होते हैं।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

दर्शन करने योग्य तो केवल श्रीभगवान् ही हैं, संसार नहीं। इसलिए भगवान् का ही चिंतन और भगवन्नाम का ही जप करो। चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते सब समय भगवान् को ही याद करो। यही असली भक्ति है। जगत् की सब वस्तुएँ असत् हैं अतएव नष्ट होनेवाली हैं, फिर उनकी प्राप्ति के लिए भक्ति क्यों करते हो? निष्काम-भाव से एकमात्र सत्य-सनातन एवं सर्वाधार भगवान् की प्राप्ति के लिए ही भक्ति करो।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

भक्त के पास जब तक बुद्धि रहती है, तब तक वह कुछ नहीं है। सच्चा भक्त तो वह तभी होता है जब वह मन, बुद्धि और अहंकार सब कुछ भगवान् को अर्पण कर देता है। किन्तु जो वास्तव में तो भगवदर्पण नहीं हुए, केवल मुँहसे कहते हैं कि हमने तो अपना सब कुछ भगवान् को अर्पण कर दिया है, अब हमारा कोई कर्त्तव्य नहीं है, वे तो पतित हो जाते हैं। भाव तो हृदय से होना चाहिए, केवल कहने-सुनने से कुछ नहीं होता।

सत्संग पत्रक–36

महाशिवरात्रि पर्व पर

वेद–मंत्र है,

'तथानस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि'

भगवान् शंकर का एक नाम 'गिरिशन्त' है, जिसका सीधा–सीधा अर्थ है कैलाश पर्वत पर शयन करनेवाले महादेव ! नारायण, कितनी शीतल और कितनी श्वेत वह चोटी है जिसके ऊपर गौरी सहित शंकर निवास करते हैं। एक तो देखो कि वह चोटी कितनी ऊँची है, उच्चता है, और दूसरे उसमें श्वेतिमा है, तीसरे उसमें शीतलता है। तुम अपने हृदय को उस स्थान पर ले चलो जो कैलाश शिखर के समान ऊँचा हो। संसारकी निचली चीजोंमें कहीं फँसा हुआ न हो और उसमें बर्फके समान श्वेतिमा हो, निर्मलता हो, स्वच्छता हो माने उसमें संसारकी किसी भी वस्तु के लिए ताप न हो, विरक्त हो। वह वैराग्यवान्, वह शीतल, वह उच्चकोटि की जो चोटी होती है, उस पर गौरी–शंकर भगवान् विराजते हैं।

आज महाशिवरात्रि के अवसर पर हम प्रार्थना करते हैं कि हे गिरिशन्त ! आप अपनी कल्याण–विस्तारिणी– परम कल्याणरूपा मूर्ति के द्वारा अपनी प्रकाशमयी अनुग्रह–दृष्टिसे हमारी ओर देखें। '**अभिचाकशीहि**'– आत्मीयदृष्टि से हमारी ओर देखें, अपना समझकर हमारी ओर देखें। माने जैसे पिता अपनी सम्पत्ति का सम्पूर्ण अधिकार अपने पुत्र को सौंपता है, वैसे ही हे सदाशिव ! अपने सम्पूर्ण ज्ञान, अपने सम्पूर्ण ध्यान की दृष्टिसे हम को देखें माने अपने ज्ञानसे हमको ज्ञानान्वित कर दें।

सत्संग पत्रक–37

दोस्ती बराबर वाले से

यदि आप अपने चंचल मन को अचल करना चाहते हैं तो चंचल से दोस्ती कीजिये, चंचल को चंचल के साथ जोड़िये। वह चंचल कौन है ? वह चंचल है गोकुल में, वह चंचल है वृन्दावन में। उसके पाँव सूधे नहीं पड़ते हैं। वह ठुमुक-ठुमुक के चलता है, कभी सीधी कमर से नहीं चलता। हमेशा इतराता हुआ, इठलाता हुआ ही चलता है। उसकी आँखें चंचल हैं। उसकी मुसकान में जादू है। उसकी बांसुरी बोलती है तो उसमें नये-नये स्वर, नयी-नयी धुन, नयी-नयी तान आती है। आप अपने मनको भी उसकी ठुमुक के साथ ठुमुकने दीजिये, उसके स्वर के साथ बोलने दीजिये।

नारायण, मन की चंचलता मिटानेके लिये आप उसे उस चंचल के साथ जोड़िये- जो कभी हिलता है और कभी शान्त हो जाता है; कभी दूर हो जाता है और कभी नजदीक हो जाता है; कभी सबके बीच में होता है और कभी अलग हो जाता है। जब चंचल से चंचल की मित्रता हो जाएगी, तब वह आपके मन का कान पकड़ कर उसको बिलकुल सीधा कर देगा।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–38

'भगवद्-कृपा'

भगवान् की ओर से जो आता है उसमें भगवान् का हाथ देखिये। भगवान् तो सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, परम दयालु हैं। वे जो क्रिया हमारे सामने भेजते हैं, जो वस्तु भेजते हैं, जो भोग भेजते हैं, जो परिवार भेजते हैं, उन सबमें उनकी कृपा ही भरपूर रहती है। भगवान् की कृपा को जब आप पहचानने की कोशिश करेंगे, पहचान लेंगे, और हर काममें भगवान् की कृपा है, भगवान् की कृपा है– ऐसा अनुभव करेंगे, तब भगवान् की कृपा आपको स्पष्ट हो जायेगी। कृपाका अनादर करनेसे ही कृपा पहचान में नहीं आती है। उसमें अपनी इच्छा की प्रधानता न रखकर भगवान् की इच्छा की प्रधानता रखनी चाहिए।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

परमात्मा के साथ हमारा इतना अविच्छिन्न सम्बन्ध है कि उसे परमात्मा भी चाहे तो नहीं तोड़ सकता। परन्तु परमात्मा के साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर भी इस जीवन में दु:ख कहाँ से आता है ? अनुस्मरण न होने से।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–39

'श्रीचैतन्य महाप्रभु की जयन्ती'

नारायण, ईश्वर के साथ अपने जीवनको जोड़ने के लिए नाम के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। असल में हमारे आनन्द में, हमारी भगवद–प्राप्तिमें यह जो इच्छाएँ हैं, यही बाधा डालती हैं और इच्छा चेतन को घेर कर उसको 'अहं' बना देती है। जो इच्छाओं से घिरा हुआ नहीं है, उस चेतन में 'अहं' भी नहीं है। तो आप नाम का उच्चारण कीजिए। नाम, नाम, नाम, नाम! नाम के सिवाय रूप की भी इच्छा न हो। नाम के सिवाय समाधि की भी इच्छा न हो। नाम के सिवाय वैकुण्ठ की भी इच्छा न हो, यह जो इच्छा हीन नाम है, असल में यह नाम परमात्मा की सबसे सन्निहित उपाधि है। रूप तो पृथक्ता भी कर दे। स्त्री अलग है, पुरुष अलग है– दोनों पञ्चभूत के हैं। लेकिन रूप के अलगाव से दोनों अलग हो गये हैं। परन्तु नाम रूपके समान पृथक्ता की स्थापना नहीं करता। एक व्यक्ति के दो नाम भी, दस नाम भी हो सकते हैं। नाम, नाम, नाम और देखें आप परमानन्द का उदय होगा। असल में नाम ही परमानन्द है। इच्छाओंके कारण जब हम नाम से कुछ पाना चाहते हैं तब वह कहता है, 'मैं तो इनके घरमें बैठा हुआ हूँ और ये दूसरे को चाहते हैं। ये हमारा तिरस्कार कर रहे हैं।' बस इतनी–सी बात है। केवल इतनी–सी बात है कि नाम आपकी जीभ पर, नाम आपके कण्ठमें, नाम आपके हृदयमें, नाम आपके सिर में। और, आप देख रहे हैं कहाँ ? देख रहे हैं आप एक घंटा बाद, छः घंटा बाद, एक मील दूर, छः मील दूर। देख रहे हैं आप दूसरेकी ओर और नाम नरेश, नाम भगवान्, नाम ब्रह्म आपके हृदय में बैठा हुआ है।

वह सच्चिदानंद स्वरूप भगवन्नाम आपके जीवन में विजयी–व्याप्त होवे–ऐसी श्रीचैतन्य महाप्रभु के श्रीचरणों में प्रार्थना।

सत्संग पत्रक–40

मानव किसको कहते हैं ?

जो मनु और श्रद्धा की संतान है, उसको बोलते हैं 'मानव'। तो श्रद्धा आपके हृदय में है कि नहीं ? और, मनु माने मनन, विचार, विवेक। विवेक-हीन श्रद्धा अंधी है और श्रद्धाहीन विवेक अस्थिर है। विवेक में स्थैर्य आता है श्रद्धा से और श्रद्धा में प्रकाश आता है, दृष्टि आती है विवेक से। यही श्रद्धा और विवेकको जो संतान है, उसका नाम है 'मानव'। जो विवेकी और श्रद्धालु पुरुष है वह मानव है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

जहाँ दुर्वासना है, वहाँ सद्वासना आनी चाहिए। जहाँ दुश्चरित्र है, वहाँ सच्चरित्रता आनी चाहिए। जहाँ अभिमान है, वहाँ शरणागति आनी चाहिए और जहाँ राग-द्वेष है, वहाँ भगवान् की भक्ति आनी चाहिए तथा जहाँ संसारीपने का बोध है, पराधीनता है, वहाँ अद्वैत-तत्त्व का बोध होना चाहिए।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

हम एक-एक कदम आगे रखें और आगे बढ़ते जाएँ तथा किसी प्रलोभन में न फँसें।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–41

जनवरी–फरवरी १९५७

कर्मका फल अधिकसे अधिक यही हो सकता है कि कुछ समय के लिये करणोंका निरोध हो जाय, द्रव्यों और गुणोंकी प्रतीति बंद हो जाय, कर्तृत्व शांत हो जाय, नैष्कर्म्य अवस्था की प्राप्ति हो जाय।

यह विचार करने योग्य है कि कर्म का फल कर्म ही है कि कर्मसे विलक्षण अकर्म। स्वयं साधन और फल नहीं हो सकता। अनित्य कर्म का फल नित्य अकर्म भी नहीं हो सकता तब थोड़ी देर तक की अकर्मता ही उसका फल है

कर्म (कोई भी और कभी भी एवं किसीकेद्वारा भी) द्रव्य, करण और कर्ताको नितान्त निवृत्त कि नहीं हो सकते। इनकी त्रिपुटी उदय विलयको प्राप्त होती रहती है। इसीसे कर्मकी साधना से संसारकी आत्यन्तिक निवृत्ति रूप मोक्ष नहीं हो सकता।

कर्म की त्रिपुटी यदि उदय और विलयको प्राप्त होती ही रही तो संसार तो बना ही रहता?

कर्म होगा तो पाप पुण्य भी होगा। सुख दुःख भी होगा। राग द्वेष भी होगा। कर्म द्रव्यका स्वभाव है। अज्ञानी उसका अपनेमें अभिमान भी करता है। जबतक द्रव्य की स्वतः सत्ता नहीं मिटेगी तब तक अनर्थकी निवृत्ति कैसे?

जगत् का मूल द्रव्य और इसका द्रष्टा जड़ और चेतन — इन दोनोंके तात्त्विक स्वरूप का विचार ही एकमात्र शरण है

जैसे कर्म शारीरिक प्रयत्न से होते हैं, वैसे ही उपासना और योग भी मानसिक प्रयत्नोंसे होते हैं। इनको कर्ता की अपेक्षा।

अखण्डानन्द (स्वरूप)

सत्संग पत्रक–42

नव–संवत्सर पर

'श्रद्धा जननीव कल्याणी योगिनं पाती'।

श्रद्धा माता के समान कल्याण–कारिणी है। वही योगी की रक्षा करती है। रोग होने पर भी साधन न छूटे, आलस्य आने पर भी साधन न छूटे, प्रमाद होने पर भी साधन न छूटे– यह तभी होगा जब अपने साधन में तुम्हें श्रद्धा होगी। जब श्रद्धा से साधनानुष्ठान करते हैं तो जीवन में एक प्रकारकी शक्ति आती है। शक्ति आने पर अन्तःकरण में सुप्त स्मृतियाँ स्वतः जाग जाती हैं। स्मृतियाँ जाग जाती हैं तब आत्मा अजर–अमर है– यह बात प्रत्यक्ष होने लगती है; क्योंकि पूर्वजन्म की स्मृतियाँ भी जाग जाती हैं। स्मृति जागने से प्रज्ञा अर्थात् विवेक का उदय हो जाता है कि 'मैं स्थूल देह नहीं हूँ'।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

श्रद्धा–विश्वास की एक रासायनिक प्रतिक्रिया होती है जो पूरे जीवन को परिवर्तित कर देती है। जैसे काम–क्रोधादि से शरीर के रक्त–संचार में परिवर्तन हो जाता है वैसे ही श्रद्धा–विश्वास से भी होता है।

विश्वास बाह्य और व्यावहारिक है, जबकि श्रद्धा आंतरिक है, बड़ों पर होती है और सद्गुण देखकर होती है। यह ज्यादा–कम होती है, संसारियोंकी श्रद्धा जल्दी डिग जाती है। जो सारे संसारको छोड़नेको तैयार है, उसकी श्रद्धा अधिक पक्की होगी। उसके यदि हजार रुपये भी ले लिए तो वह कहेगा कि मुझे तो वैसे ही छोड़ना था और उसमें यदि इन्होंने छुड़ा दिया तो बहुत अच्छा किया, कृपा है ।

नारायण, श्रद्धा जिसपर की जाती है, उसकी सम्पत्ति नहीं है, पर जिसके हृदय में है उसकी सम्पत्ति है। श्रद्धा सत्यके बहुत निकट है।

सत्संग पत्रक–43

लोग समझते नहीं हैं कि अमुक वृत्ति को स्वीकार करके वे क्या हो जायेंगे; वासना के आवेश में चाहे जो करते रहते हैं। बोलेंगे कि वह तो बदमाश है। अरे, उसको बदमाश समझने वाले तुम तो द्वेषी हो गए न! वह तो क्रिया से बदमाश और तुमने तो द्वेष को दिल में ही बिठा लिया न!

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

किसी के द्वार पर उसकी अनुपस्थिति में कोई कूड़ा डाल गया। लौट कर उस आदमी ने कूड़े का फोटो लिया। दूसरों को दिखाना पड़ेगा– यह सोचकर कूड़े को उठाकर घर में रख लिया। पहले द्वार गन्दा था, अब घर भर गन्दा हुआ और मन गन्दा हुआ सो अलग। नारायण कहो ! किसी के राग–द्वेष से अपने घर माने अंतःकरण को गन्दा मत करो। अपने चित्त पर राग का लाल रंग या द्वेष का काला रंग मत चढ़ने दो।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

साधना का उद्देश्य सिर्फ सजगता है। साधना साधक को सजग रखती है। साधन–संलग्न सजग साधक ही भगवत्कृपा को पकड़ने में समर्थ होता है और उसका उपयोग करके कृतकृत्य हो जाता है।

❖◆❖

सत्संग पत्रक–44

श्रीरामनवमी के पर्व पर

इस धरती पर भगवान् श्रीरामचन्द्र का नाम सबके पास पहुँचा हुआ है। ऐसा कोई नहीं है, जिसके कान में राम का नाम पड़ा न हो। आज भी लोग एक दूसरे के कान में राम–राम–राम कहते हैं–

''रामो रामश्च रामेति कर्णे–कर्णे जपन् जनः''

श्री रामचन्द्र किसी–किसी के लिए तो अवतार हैं, वैकुण्ठादि लोक से आये हैं। किसी ने कहा कि काम रूप रावण का नाश करने के लिए अपने हृदय में जो भगवान् का अवतार होता है, वही राम हैं। किसी ने कहा कि राम तुरीय तत्त्व हैं। सब ठीक है, परन्तु सीधी बात यह है कि अयोध्या नगरी है, उसमें कौशल्या और दशरथ दम्पत्ती हैं और उनके पुत्र हैं रामचन्द्र। वे मनुष्य के रूप में इतने सद्गुण सम्पन्न हैं कि वर्तमान और भविष्य में सदा सर्वदा मानव के रूप में बने रहेंगे। एक सच्चे मनुष्य के जीवन में कितने और कैसे–कैसे गुण होने चाहिए, उनका व्यवहार कैसा होना चाहिए, इसके लिए रामचन्द्र का चरित्र हम सबके लिए आदर्श है। महर्षि वाल्मीकिजी ने अपने ग्रन्थ में उनको पदे–पदे भगवान् कहीं कहा है बल्कि उनको मनुष्य रूप में ही वर्णित किया है।

लोग भगवान् के गुणों की बात सुनकर झट यह कह देते हैं कि इसमें आश्चर्य की क्या बात है! भगवान् में तो ऐसे बड़े–बड़े गुण होने ही चाहिए। ऐसे गुण मनुष्य में कैसे हो सकते हैं ? बात किसी अंश में ठीक भी है, परन्तु जब हम वाल्मीकि रामायण में श्रीरामचन्द्र भगवान् के गुणों का वर्णन मनुष्य रूप में पढ़ते–सुनते हैं तब यह सम्भावना बन जाती है कि

उनके जैसे गुण हमारे जीवन में आ सकते हैं। श्रीरामचन्द्र के पूरे गुणों को न सही उनके थोड़े गुणों को तो धारण कर ही सकते हैं। क्या आप श्रीरामचन्द्र की तरह अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन नहीं कर सकते ? श्रीरामचन्द्र ने राज्य का परित्याग करके चौदह वर्षों तक वन में निवास किया, वन्य जीवन व्यतीत किया, इसी से पता चलता है कि उनके हृदय में माता-पिता की आज्ञा के प्रति कितनी निष्ठा थी। जो व्यक्ति धर्म पालन में कष्ट उठाने में हिचकता है, वह धर्मनिष्ठ नहीं होता। महर्षि वाल्मीकि का कहना है ''**रामो विग्रहवान् धर्मः**'' श्रीरामचन्द्र मूर्तिमान् धर्म हैं, जिनका अपनी इंद्रियों पर, अपने मन पर, जीवन पर नियंत्रण है। वेदों में जो ''**मातृ देवो भव, पितृ देवो भव**'' आदि वचन मिलते हैं, इनका अक्षरशः पालन किया है श्रीराम ने। श्रीरामचन्द्र केवल त्रेतायुग में ही नहीं हुए, आज भी इस धरती पर हैं। उनके गुणों की तन्मात्राएँ धरती पर फैली हैं और उनको स्वीकार कर के ही मनुष्यों के हृदयों में धर्म-भावनाओं का उदय होता है और अनंत काल तक होता रहेगा।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–45

यह निश्चित रूपसे समझिये कि कोई दूसरेके मनका ज्ञाता नहीं हो सकता। न आपके मनकी बात दूसरे समझ पाते हैं और न दूसरों के मनकी आप। अत: ठोस जगत् में आप अपनी वाणी एवं शरीर के व्यवहार को अपने पवित्र चिन्तन का अनुयायी बनाइये। दूसरों की बुराई सोचना अपनेको बुरा बनाना है। ध्यान बुरा है तो आप बुरे हैं। ध्यान अच्छा है तो आप अच्छे हैं।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

ध्यानमें एकाग्रता का महत्त्व उतना नहीं है जितना महत्त्व भाव का है। जहाँ मनको एकाग्र करना है, वहाँ ईश्वर-बुद्धि होना परम आवश्यक है। इसके बगैर जो ध्यान होगा वह लौकिक होगा और बेकार सिद्ध होगा।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

आजकल आत्मज्ञानी तो बहुत मिलते हैं, किन्तु आत्म-प्रेमी कोई विरला ही दिखाई देता है। 'ज्ञान' का अर्थ है जानना, किन्तु यदि जान लिया जाय और प्रेम न हो तो परिणाम क्या हुआ ? हम देखते हैं कि ज्ञानी को देखकर चित्त में कोई आकर्षण नहीं होता, किन्तु प्रेमी चित्तको तत्काल आकर्षित कर लेता है। अत: जान पड़ता है कि भगवान् का मुख्य स्वरूप प्रेम ही है। सूखे ज्ञान से कोई लाभ नहीं है। जो भगवान् का भक्त होता है उसे तो वे स्वयं ज्ञान प्रदान कर देते हैं– इसमें कोई संशय की बात नहीं है। इसलिए ज्ञानी और भक्त दोनों ही को प्रेमी होने की बड़ी आवश्यकता है। निरंतर चिंतन से प्रेम होता है और फिर स्वभाव से ही चित्त और सब ओर से हट जाता है।

सत्संग पत्रक– 46

श्रीहनुमत्-जयन्ती

हनुमान् जी के जीवनमें यह विशेषता है कि जो इनके सम्पर्क में आया, उसे इन्होंने किसी–न–किसी प्रकार भगवान् की सन्निधि में पहुँचा ही दिया। लंका में विभीषण इनसे मिले, इनके संसर्ग और बातचीत से वे इतने प्रभावित हुए कि रावण की भरी सभामें उन्होंने हनुमान् का पक्ष लिया और अन्त में रावण को छोड़कर वे श्रीरामकी शरण में आ गए। जब सुग्रीव के विरोध करने पर भी भगवान् ने शरणागत की रक्षा के प्रण की घोषणा की, तब इन्हें कितना आनन्द हुआ यह कहा नहीं जा सकता। अंगद को साथ लेकर सबसे पहले हनुमान् उमंग भरी छलांग मारकर विभीषणके पास चले गये और उन्हें भगवान् के पास ले आए। उनका एक मात्र काम है भगवान् की सेवा, भगवान् के शरण में जाने वालों की सहायता।

भगवान् मारुति कहीं गए नहीं हैं। यहीं है, आज भी हमारे बीच में ही हैं। केवल हम उनको पहचानते नहीं। इसका कारण हमारी अश्रद्धा और अभक्ति ही है। तुलसीदास आदि महात्माओं ने इसी युग में मारुति के साक्षात्कार किये हैं। अब भी ऐसे साधक हैं, जो भगवान् मारुति को प्राप्त करते है।। शास्त्रों में उन्हें पाने के अनेकों मन्त्र और अनुष्ठान भी हैं। श्रद्धा पूर्वक उनका अनुष्ठान करने से मारुतिराय के दर्शन हो सकते हैं। उनके स्मरण से अंतःकरण शुद्ध होता है और उनकी कृपा से भगवत्प्राप्ति होती है।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–47

ॐ

ॐ नमो ब्रह्मणे स्वस्मै सच्चिदानन्दरूपिणे ॥
अमृतैव जगज्जीवभिदा यत्र विवर्तते ॥ १ ॥
न हन्यते न हन्त्येष न जहाति न हीयते ॥
न हिनस्ति न हं रूपस्तस्मादहमितीर्यते ॥ २ ॥
व्युत्पत्तयो भ्रान्तिजात भिदापत्ति विपर्यय: ॥
कालादिकल्पनाजालमुन्मूल्यात्मनि शेरते ॥ ३ ॥
आस्मि भामि तथा प्रीये कस्य नानुभव: स्फुट: ।
सर्वत्र सर्वदा सर्वकारेष्विति निश्चितम् ॥ ४ ॥
सच्चिदानन्दतैवात्मा परोक्षा सम्प्रकाशते ॥
अविचार्य परिच्छिन्ना परोक्षात्मा च कल्प्यते ॥ ५ ॥

स्वप्न और मनोराज्यमें जिस प्रकार अनियन्त्रित वासनाएँ उदय होती रहती हैं उसी प्रकार जाग्रतमें भी। यदि वे विवेकसे उचित हों तो उनके अनुसार क्रिया करनी चाहिये। स्वप्न और मनोराज्यके समान ही उनकी उपेक्षा कर देनी चाहिये।

क्या मनमें जितनी इच्छाएँ होती हैं और जिस परिमाणमें होती हैं उनको उसी रूपमें पूर्ण करना सम्भव है? बिल्कुल नहीं। तब तो भोग और कर्मकी प्रवृत्तिके लिये विवेक एवं धर्मकी आवश्यकता स्पष्ट है।

इच्छाएँ सर्वथा न हों तो विवेक एवं धर्म = नियन्त्रणकी आवश्यकता नहीं। सब पूर्ण हो सकें = होना सम्भव हो = किसीको प्राप्ति कता न होना हो = तो चुनाव और त्यागकी आवश्यकता भी न हो। परन्तु एक मनुष्यके लिये दोनों पक्ष असम्भव हैं। इसीलिए विवेक और धर्म अपेक्षित हैं।

अखण्डानन्द (सरस्वती)

सत्संग पत्रक–48

श्रीवल्लभाचार्य जयन्ती

श्रीवल्लभाचार्य जी महाराज साधन के रूपमें '**श्रीकृष्णः शरणं मम**', '**श्रीकृष्ण तवाऽस्मि**' लेकर आए। उसका अर्थ है यदि अन्याश्रय से अथवा स्वाश्रय से अपने अहं का नाश करोगे तो नाश करनेवाला जो 'अहं' है वह शेष रह जाएगा। परन्तु, भगवद्–अनुग्रह को दृष्टि में रखकर भगवान् की पूर्णता, भगवान् की क्षराक्षर विलक्षणता, भगवान् की पुरुषोत्तमता, भगवान् की अहं, इदं सर्वात्मरूप में उपस्थिति– जब उस भाव में तुम मग्न हो जाओगे तो तुम्हारा अहं अपने आप ही गल जायेगा। आचार्य लोग कहते हैं कि 'हे प्रभु, 'मेरा' मेरा नहीं है और 'मैं' भी मेरा नहीं हूँ। जिसको मैं मेरा समझता हूँ, मेरा मकान, मेरा धन, मेरा परिवार– वह तो मेरा है ही नहीं। मैं स्वयं भी मेरा नहीं हूँ। ये बात बिलकुल पक्की है, नियतस्व है कि 'मैं' और 'मेरा' ये दोनों तुम्हारे। प्रभु, समर्पण क्या करें? समर्पण करेंगे तो समर्पण का एक और कर्त्ता खड़ा हो जायेगा। हमने जान लिया कि सब तुम्हारा है। यह तो हमारी भूल थी जो उस वस्तु को हम अपनी समझते थे। हम अपनी भूल ही छोड़ रहे हैं। प्रभु, हम आपके चरणों में क्या समर्पित करें ? मैं कहाँ अलग हूँ, मेरा क्या अलग है कि हम आपको समर्पित करें। श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज ने जिस शरणागतिका वर्णन किया है, क्या विलक्षण है उसमें कि कर्ता का मानो कोई दायित्व ही न हो। सारा दायित्व भगवान् के सिर पर है।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

हमारी अहंता को, ममता को, राग–द्वेष को, मोह को मिटानेवाली जो भगवद्–शरणागति है, वह हमारे जीवनमें उदय हो। हमारे नन्हें–से हृदय में नन्हें से भगवान् आवें। हमारी नन्ही–सी जिह्वा पर नन्हें से भगवान् आवें। वे वामन होकर आवें और विराट् होकर सम्पूर्ण विश्वको नाप लें आत्मसात् कर लें।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–49

‘आसक्ति कहाँ ?’

उपनिषद् में आया है, **‘असङ्गो ह्ययं पुरुषः’**– पुरुष असङ्ग है। वस्तुतः असंगता तत्त्वका स्वभाव ही है। इसमें जड़–चेतनका भेद नहीं है।

देखो, मिट्टी असङ्ग है। उसमें जैसी खाद डालें वैसी हो जाती है। जला दें तो अपने रूपमें आ जाती है। जल में नमक घोलें या चीनी, वाष्पीकरण करनेके बाद वह शुद्ध जल हो जाता है, न नमकीन रह जाता है न मीठा। वायु में पदार्थ संसर्ग से सुगन्ध–दुर्गन्ध आकर भी टिक नहीं पाती। वायु थोड़ी दूर जाकर गंध–हीन हो जाता है। अग्नि का प्रकाश लाल शीशे में लाल या हरे में हरा दिखाई देता है; वस्तुतः वह रंगहीन होता है। आकाश को हम स्वच्छ आकाश कहें या मेघाच्छन्न; घटाकाश कहें या मठाकाश- वह घट–मठ, धूलि–मेघ से असङ्ग–अलिप्त ही रहता है।

नारायण, पैरोंमें आसक्ति नहीं होती, जिधर हम चलाते हैं, उधर चलते हैं। हाथ कहीं आसक्त नहीं हैं। हम जो कराते हैं, वहीं करते हैं। जिह्वा से गाली बकें या भगवन्नाम लें, वह ननु–नच नहीं करती। नेत्र वहीं फँसते हैं जहाँ हम उन्हें फँसाते हैं। तात्पर्य यह कि इंद्रियाँ केवल प्रकाशक हैं। विषयको दिखाना–मात्र उनका काम है। उनमें आसक्ति नहीं होती। ऐसे ही ज्ञानमें कहीं संग आसक्ति नहीं होती।

सच तो यह है कि मनमें भी कहीं आसक्ति नहीं होती । व्यर्थ ही लगता है कि मन अमुक वस्तु या व्यक्ति में आसक्त हो गया है। निद्रा में कोई आसक्ति नहीं टिकी रहती। बुद्धि ने सदा किसी का पक्ष नहीं लिया। असङ्गता वस्तु में सहज है। तुम तो स्वभाव से असङ्ग तो- इसे पहचानो।

सत्संग पत्रक–50

अक्षय तृतीया पर्वपर

'श्रीराधा–कृष्ण स्वरूप'

जैसे निर्गुण–ब्रह्म की प्राप्ति के लिए वेदान्तियों ने कहा कि ब्रह्मविद्या के बिना अविद्या की निवृत्ति नहीं हो सकती, ब्रह्मात्मैक्य साक्षात्कार नहीं हो सकता; वैसे जो सगुण–साकार परमेश्वर है, राधारानी के बिना उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। बिलकुल वही गणित है वह। श्री राधारानी के पक्ष के जो लोग हैं वे यह नहीं कहते हैं कि राधारानी और श्रीकृष्ण कहीं दूर रहते हैं। उनका महान् आग्रह है कि वे यहीं हैं, इसी वृन्दावन में हैं और इसी समय हैं और इसी समय नित्य–विहार हो रहा है। यह ब्रह्म से अलग कहाँ हुआ? अच्छा, वह सत् है। आकृति बदलते हुए भी सत् है। राधा कृष्ण हो गईं, कृष्ण राधा हो गए, परन्तु दोनों सत्य हैं। प्रकाश बदलते हुए भी चित् हैं और आस्वादन की प्रक्रिया में भेद होते हुए भी साक्षात् रसस्वरूप हैं। तो इनकी जो प्रक्रिया है वह बहुत आनन्ददायक है। अच्छा, राधा राधा ही रहें हमेशा और कृष्ण कृष्ण ही रहें– यह तो इनके है ही नहीं। तो वह कौन–सी चीज है जो एक बार राधा की आकृति धारण कर लेती है और एक बार कृष्ण की आकृति धारण कर लेती है ? उसको बोलते हैं 'रस'। उसीका नाम है 'हित'। वस्तु की दृष्टि से वह क्या है ? यही तो परमानन्द का उल्लास है और यह साध्य नहीं है।

'राधा' शब्द का अर्थ राध्य नहीं होता। धातु वही है, **'राध साध संसिद्धौ।'** परन्तु राध्य या साध्य नहीं है यह। यह तो सिद्धि है, सहज स्वभाव राधा है। राधा कोई कर्म–प्रत्यय नहीं है और न कर्तृ–प्रत्यय है।

यह तो बिलकुल भाव-प्रत्यय है। '**राधनं राधा, आराधनं राधा**'। यहाँ केवल भाव-ही-भाव है। और, भाव भी कैसा? भाव भी कर्ता के अधीन वाला भाव नहीं। भाव महाभाव कर दिया। क्यों ? इसलिए कि यह कर्ता के अधीन भाव नहीं है, स्वतः सिद्ध भाव है।

अब देखो, वृन्दावन उनका धाम है। यह स्वयं प्रकाश भी है और अधिष्ठान भी है और इसी में राधा-कृष्ण की आकृति प्रकट भी होती है और लुप्त भी होती है और इसी में विहार भी करती है। अच्छा, इससे बाहर कहीं जा ही नहीं सकती। चूँकि वह सगुण है, इसलिए छलकता हुआ रस है। प्रेम-वृत्ति में उल्लसित रस है, नृत्य करता हुआ रस है और शांत-वृत्ति में शांत-रस है। इसलिए यह कहना कि यहाँ के आचार्यों को अद्वैत के बारे में ठीक-ठीक आकलन नहीं था- ऐसे हम नहीं बालते हैं। हम कहते हैं कि वे जिस वस्तु का प्रतिपादन करना चाहते थे उसके लिए उन्होंने एक प्रक्रिया विशेष बना लिया और अंत में जो है सो है ही। वे भी यही कहते हैं कि जो है सो है ही। '**मान विरह भ्रम को न लेश जहँ**'- न वहाँ मान है, न विरह है, न भ्रम है। '**नहिं जानत निसि भोर**'- काल है ही नहीं। स्थानान्तर है ही नहीं। रोमाञ्च है ही नहीं। करवट बदलना तक नहीं है। और, श्री कृष्ण को राधा के अतिरिक्त और किसी की स्फूर्ति नहीं है। इतनी बढ़िया प्रक्रिया यहाँ के महापुरुषों की। उन आचार्यों का दृष्टिकोण बड़ा उन्नत है। नारायण, यह ज़रूर है कि बाद के लोग अपने आचार्यों से थोड़ा अलग-थलग पड़ गये।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–51

आद्य शंकराचार्य जयन्ती

साधक की जिज्ञासा तीव्र होनी चाहिए। जहाँ बैठे-बैठे प्रश्न का उदय हुआ वहाँ से उठो मत, जब तक उसको विचार कर हल न कर लो। प्राप्त की प्राप्ति में व मुक्त की मुक्ति में क्या विलम्ब है, क्या श्रम है और किस देश, काल व अवस्था की प्रतीक्षा है ! केवल जिज्ञासा ईमानदारी की तथा तीव्र होनी चाहिए।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

व्यष्टि आधार सत् है, समष्टि का आधार भी सत् है, फिर दोनों में भेद किसने किया ?

सत् स्वरूप के अज्ञान ने।

'मैं चेतन हूँ' 'तुम चेतन हो' ' वह चेतन है।' चेतन-चेतन का भेद किसने किया ?

चेतन स्वरूप के अज्ञान ने।

'मैं प्रिय हूँ' 'तुम प्रिय हो' और 'वह प्रिय है'। प्रिय-प्रिय में भेद किसने किया?

प्रिय स्वरूप के अज्ञान ने।

सत्-सत् में भेद करने वाला असत् है। चित्-चित् में भेद करने वाला असत् है और प्रिय-प्रिय में भेद करने वाला असत् है। तो नारायण, तत्त्वदृष्टि से असत् और व्यवहारदृष्टि से सत् अतएव अनिर्वचनीय भावरूप इस अनादि अज्ञान की निवृत्ति केवल तत्त्वज्ञान के द्वारा ही होती है। और, यह तभी सम्भव है जब औपाधिक भोगों के प्रति अरुचि हो। यही वैराग्य की पराकाष्ठा है। विवेक और वैराग्य परस्पर उपकारी हैं।

सत्संग पत्रक–52

श्रीरामानुजाचार्य जयन्ती

देखो, पूजा में क्रिया की प्रधानता होती है। उपासना में विधि की प्रधानता होती है। भक्ति में प्रेम की प्रधानता होती है और समर्पण में भगवान् के लिए वस्तु का समर्पण, क्रिया का समर्पण, भोग का समर्पण, धर्म का समर्पण और तपस्या का समर्पण होता है। इतना ही नहीं, अपना प्यार भी भगवान् को दो और अपना विचार भी भगवान् को दो। मन और बुद्धि भी भगवान् के प्रति समर्पित करो। सब साधना हैं। परन्तु शरणागति में यह विशेषता है कि उपाय और उपेय, साधन और साध्य दोनों एक हैं। वही प्राप्त हैं और वही प्राप्ति के साधन हैं।

अब प्रश्न उठता है कि शरणागति किसकी होनी चाहिए ? इस सम्बन्ध में श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज ने कहा कि शरण उसकी लेनी चाहिए जो सर्वज्ञ हो, माने हमारे हृदय की जानता हो और सर्व–शक्ति हो माने उसको पूरा करनेकी शक्ति रखता हो तथा इतना दयालु, इतना कोमल हृदय हो कि उसको पूर्ण किये बिना रह नहीं सकता हो। इतना ही नहीं, वह आश्रित–कार्य–निर्वाहक हो और आश्रयण–सौकर्यापादक हो।

आश्रित–कार्य–निर्वाहक वह होता है जो अपने शरणागत के सारे कार्य, जो कुछ भी उसको अपने जीवन में करना बाकी है, उसको स्वयं वही कर दे। कह दे– बस, बस, बस ! अब तुम देखो और मैं तुम्हारा काम किये देता हूँ। आश्रित को बैठा दिया नाव पर कि तुम मेरी ओर देखो और मैं नाव खेकर पार करता हूँ। तुम्हें अपने हाथ से नाव खेने की जरूरत नहीं है। इसको साधारण रूप से लोग नहीं समझते हैं। अच्छा,

'आश्रयण–सौकर्यापादक हो' माने अपने पास आने में, आश्रय लेनेमें, शरण लेने में सहायक हो। शरणागत के प्रति यह कह देना कि तुम उनके पास जाओ, उनकी शरण ग्रहण करो और वहीं तुमको शांति मिलेगी अथवा तुम स्वयं विचार करके काम करो–उचित नहीं होता है।

वाल्मीकि रामायण में श्रीरामचन्द्र बोलते हैं,

'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।

'एक बार, केवल एक बार मेरे प्रति प्रपन्न हो जाए, पकड़ ले मेरा पाँव और बोल दे कि मैं तुम्हारा हूँ, तो चाहे वह कोई भी प्राणी क्यों न हो, उसको निडर कर देता हूँ। उसके पशुत्व को ही सर्वथा निवृत्त कर देता हूँ– यह मेरा व्रत है, मेरी प्रतिज्ञा है।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–53

तुम जब किसी के दोषों का चिंतन करते हो तो उसकी अपेक्षा अपनी ही हानि अधिक करते हो; क्योंकि चिंतन ही तो चित्त है। तुम्हारा चित्त यदि दोषों का चिन्तन करेगा तो दोषमय हो जायेगा। इसलिए दूसरों की तो क्या बात, अपने दोषों का चिंतन न करके उन्हें तत्क्षण छोड़ दो।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

जब तुम दूसरों के सम्बन्ध में कोई धारणा बनाते हो तब कितने अन्धकार में रहते हो– इसका तुम्हें बिलकुल पता नहीं रहता; क्योंकि अभी तो तुमने अपने मन को ही कभी प्रत्यक्ष रूपसे नहीं देखा है– जो कि तुम्हारा मापदण्ड है। इस अज्ञात मन के जाल में फँसकर कोई धारणा बनाओगे तो व्यर्थ ही राग–द्वेष के शिकार हो जाओगे। सावधान रहो, यह कहीं तुम्हें उलझा न दे!

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

जो व्यक्ति अपने सामने खड़ा है– अभी जिससे तुम व्यवहार कर रहे हो, उसके हृदय में नारायण हैं। कहीं वही यह वेश धारण करके न आयें हों! खूब सावधान रहो– कहीं प्रमाद न हो जाये।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

ध्यान रहे– जो कुछ तुम देख रहे हो, यह परमात्मा का ही स्वरूप है। तुम्हारे हृदय की मलिनता, अभक्ति अथवा भ्रान्ति से ही यह भिन्न रूप में भास रहा है। इसलिए क्रिया की तो बात ही क्या, संकल्प से भी किसी का तिरस्कार मत करो!

सत्संग पत्रक–54

गंगा-दशहरा पर्व पर

श्रीमद्भागवत पर एक वंशीधरी टीका है, उसमें एक श्लोक उद्धृत है,

'यदि वापि चाङ्गं, करे रथाङ्गं शयने भुजङ्गं
याने विहङ्गं चरणेम्बु गाङ्गम्।

जो एक बार गंगा जल का सेवन करता है उसको फिर शरीर नहीं मिलता। यदि उसको अंग अर्थात् शरीर मिले तो ऐसा अंग मिलेगा कि हाथ में चक्र होगा और चलने के लिए गरुड़ मिलेगा। माने साक्षात् विष्णु हो जाएगा। गंगाजीका कृपापात्र हो जानेके बाद यदि शरीर मिलेगा तो ऐसा-वैसा नहीं मिलेगा।

गंगाजल से बढ़कर पवित्र और कोई भी वस्तु नहीं है। वह विष्णुपदी है। और, उसका आध्यात्मिक स्वरूप जो है वह तो ज्ञान है। श्रीशंकराचार्य ने कहा,

'ज्ञान प्रवाहः विमलादि गंगा,
सा काशिकाहं निजबोध रूपम्'।

यह ज्ञान की धारा बहती है। **'गं गगनं गच्छति इति गंगा, गच्छति व्याप्नोति'**– जो समूचे आकाश में व्याप्त होकर ज्ञानधारा रहती है, यह महानतम विशाल आकाश जिसमें अध्यस्त है, जिससे प्रकाशित होता है, उस तत्त्व का नाम गंगा है।

गंगाजी में एक शक्ति यह है कि वह पाप को खींच लेती है। स्नान करते ही श्रद्धालु मनुष्य के हृदय में एक शांति का और एक शीतलता का

संचार होता है। इस प्रकार गंगाजल बड़ा पवित्र है इससे ब्रह्मा का सम्बन्ध है, इसलिए अंत:करण शुद्धि करता है। शंकरजी के साथ इसका सम्बन्ध है इसलिए शरीर को शुद्ध करता है और विष्णु के साथ इसका सम्बन्ध है इसलिए तत्त्वज्ञान देता है। यह जीव-संबद्ध अविद्या से मुक्त करनेके लिए ही है। यदि कोई गंगाजी के तट पर रहे और देहभाव खूब दृढ़ होवे, अपने को देह ही माने, तब तो वह भगवद्-भक्त हो जाएगा। और, यदि देह भाव छूट जाए तो भगवान् से एक हो जाएगा।

❖ ◆ ❖

सत्संग पत्रक–55

परम पूज्य महाराजश्रीके सान्निध्य में

प्रश्न– भगवान् को किस प्रकार पाया जा सकता है ?

उत्तर– भगवान् को चाहने से ही उनकी प्राप्ति होती है।

प्रश्न– क्या केवल चाहने मात्र से भगवान् मिल सकते हैं ?

उत्तर– अवश्य मिल सकते हैं। भगवान् स्वयं हमारे बनने के लिए व्याकुल रहते हैं। परन्तु हम वास्तव में उन्हें चाहते नहीं।

प्रश्न– आपके कहने का अर्थ है कि हम भगवान् को नहीं चाहते ?

उत्तर– नहीं, मेरा आशय है कि हम वास्तविक रूपसे भगवान् को नहीं चाहते। संसार के सामान्य अर्थ के लिए हम जितना कष्ट उठाते हैं, अपने पुत्र–कन्यादि की किसी प्रकार की व्याधि को दूर करनेके लिए जितना परिश्रम करते हैं, एक–एक वासना की तृप्ति के लिए जितनी चित्त की एकाग्रता और कष्ट–सहिष्णुता का परिचय देते हैं, भगवत्–प्राप्ति के लिए उसकी सहस्रांश भी एकाग्रता और व्याकुलता हमारे अन्दर है क्या ? हम सब अपने–अपने सुख के लिए लालायित रहते हैं। यदि किसी अंश में भगवान् को चाहते भी हैं तो वह भी अपने सुख के लिए।

प्रश्न– मानव जीवन की प्राप्ति का विषय क्या सुख के अतिरिक्त कुछ और हो सकता है ?

उत्तर– मानव जीवन की प्राप्ति का विषय है आनन्द, सुख नहीं।

प्रश्न– आनन्द और सुख में पार्थक्य क्या है ?

उत्तर– सुख माया कल्पित है, आनन्द नित्य और सत्य है।

सुख अपने लिए और आनन्द दूसरों के लिए व्याकुल रहता है।

सुख प्रभु बनना चाहता है, आनन्द अपने आप को दूसरों पर न्योछावर कर देना चाहता है।

सुख को सदा कुछ खो देने का भय रहता है, आनन्द अपना सर्वस्व भी अकुंठित भाव से वितरण कर तृप्ति लाभ करता है।

सुख बाधा विघ्नों से अपनी रक्षा करने के लिए अति व्यस्त रहता है, आनन्द संसार की सभी बाधाओं विपत्तियों को चूर्ण–विचूर्ण कर आनन्द में परिणत करता है।

सुख सुधा के लिए लालायित रहता है, आनन्द दु:ख रूपी विष कंठ में धारण कर सदा शिव की भाँति आनन्द में निमग्न रहता है।

सारांश यह कि सुख स्वार्थपर है और आनन्द नि:स्वार्थ।

❖ ◆ ❖



अन्तर्यामी आज साज क्या सजा रहा तू।
हृत्तन्त्रीपर तान कौन सी बजा रहा तू।
यह तेरा ही यन्त्र इसे अभिमन्त्रित करले।
अपनी रुचिसे रागरागिनीके स्वर भरले।

— · —

शान्ति क्रान्ति वैराग्य रागमें क्या कुछ अन्तर।
सब तेरे संकेत नृत्यरत नट से सुन्दर।
शान्त रौद्र शृङ्गार करुण रस बरस रहा है।
रस तुलीसे परस, चित्र सरस रहा है।

— · —

मैं अखण्ड अद्वैत सच्चिदानन्द ब्रह्म हूँ।
अचल, अकल, अमान, अतनचेतन अजिह्म हूँ।
ऐसा तत्त्वज्ञान दिया, अज्ञान मिटाया।
बना स्वयं तू मान, अहो भ्रम भेद हटाया।

मेरा मैं ही धन्य अन्य सा चमक रहा तू।
क्या प्रतीति की रीति प्रीति बन दमक रहा तू।
विरह मिलन के खेलमेल अब चला करेंगे।
निज पटपर निजज्योति चित्र सुख चला करेंगे॥